विषय-सूची

राज्य-तंत्र

—०:०—

भूमिका

नागरिक-विज्ञान एक नया विषय है। इसका सूत्रपात इसी युग में हुआ है। अमरीका तथा इंग्लिस्तान जैसे सभ्य राष्ट्रों में भी इसे अभी 'नया' ही मानते हैं। भारतवर्ष मे तो यह वस्तुतः ही नया है। तिसपर हमारे हिन्दी-पाठको के लिये तो यह सर्वथा नया है। अतः इसकी रूप-रेखा को भली प्रकार समझ लेना चाहिये।

साधारण अर्थों में नगर शहर को कहते हैं, और नगर में रहने वाले व्यक्ति का नाम है नागरिक। पर व्यापक अर्थ मे नगर से अभिप्राय 'निवास-स्थान' से है। इस अर्थ में एक ग्राम के रहने वाले व्यक्ति को भी नागरिक कह सकते हैं, कारण कि उसका ग्राम ही उसका निवासस्थान है और उसके लिये वही उसका नगर है। ग्राम और नगर किसी न किसी प्रांत, देश या राष्ट्र में होते हैं। अतः प्रत्येक नागरिक का अपना प्रांत, देश या राष्ट्र भी उसका निवास-स्थान है। और अधिक विस्तृत अर्थ में प्रत्येक मनुष्य इस संसार में रहता है। अतः यह संसार भी उसका निवास स्थान है। इस आधार पर संसार भर के प्रत्येक मनुष्य को—चाहे वह किसी ग्राम मे रहता हो, चाहे नगर में, चाहे किसी प्रांत में रहता हो, चाहे राष्ट्र मे—नागरिक कह सकते हैं।

एक ग्राम, नगर एवं राष्ट्र तथा संसार के निवासी के रूप में मनुष्य के अनेकविध अधिकारों और कर्तव्यों के अध्ययन को 'नागरिक-विज्ञान' कहते हैं। एक नगर-निवासी के नाते मनुष्य की क्या २ जिम्मेवारियां हैं, उसके अपने ग्राम या शहर के प्रति क्या २ कर्तव्य

हैं, अपने राष्ट्र के प्रति क्या २ कर्तव्य हैं और संसार-भर के प्रति क्या २ कर्तव्य हैं, इन सब बातों का परिज्ञान नागरिक-विज्ञान का विषय है। श्री व्हाइट महोदय ने नागरिक विज्ञान का लक्षण यों किया है—"नागरिक-विज्ञान मानवीय परिज्ञान की उस उपयोगी शाखा का नाम है जो एक नागरिक की प्रत्येक प्रकार की—भूत भविष्यत् तथा वर्तमान एवं स्थानीय, राष्ट्रीय तथा विश्वजनीन—समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी कराती है"।

एक शब्द में प्रत्येक सभ्य व्यक्ति को 'मनुष्य-समाज के सदस्य' के रूप में जो कुछ ज्ञातव्य तथा कर्तव्य है, उसका प्रतिपादन करना नागरिक विज्ञान का काम है। कारण कि ग्राम, नगर, प्रान्त, राष्ट्र तथा विश्व मनुष्य-समाज की ही भिन्न २ इकाइयां हैं—मनुष्य-समाज के ही भिन्न २ रूप हैं। अतः इन सब के सम्बन्ध में, इनकी समस्याओं, प्रबन्ध तथा शासन के सम्बन्ध में जो कुछ जानना अपेक्षित है, उसी का प्रतिपादन नागरिक विज्ञान करता है।

आज के संसार में बड़े प्रबल वेग से परिवर्तन आ रहे हैं। आज की दुनिया अब पुरानी दुनिया नहीं रही। प्राचीन आचार-विचार, पुरानी भावनाएं तथा धारणाएं, एवं प्राचीन ज्ञान-विज्ञान बड़े वेग से बदल रहे हैं। पुराने लोगों का यह विश्वास था कि 'राज्य किसी एक व्यक्ति की बपौती या उसकी जायदाद है। ब्रह्मा स्वर्ग से ही उस व्यक्ति को हमारे पर शासन करने के लिये हमारा राजा बना कर भेज देता है। उसकी आज्ञा का मूकवत् पालन करना हमारा धर्म है'। पर आज का संसार इस बात को नहीं मानता। आज हम ब्रह्मा की सहायता के बिना स्वयं किसी योग्य व्यक्ति को अपना राजा बनाना चाहते हैं, जो [illegible] से, हमारे हित के लिये, हमारी इच्छा के अनुसार,

हमारा शासन-प्रबन्ध करे। अपनी, अपने नगर की और अपने एवं अपने संसार की समस्याओ को हम स्वय सुलझाना चाहते आज लोगो को राजा की 'ईश्वरीयसत्ता' पर विश्वास नहीं आज जन-तंत्र का युग है। आज राजा को सत्ता ब्रह्मा से नही, जनता से मिलती है।

इस जन-तंत्र को कार्य रूप में परिणत करने के लिये ज [illegible] को प्रतिनिधि चुनने के अधिकार दिये जा रहे हैं। स्थानीय [illegible] के प्रबन्ध की जिम्मेवारी उन पर डाली जा रही है। स्थानीय राष्ट्रीय समस्याओ को समझना तथा उनके लिये उपयोगी विधान बनाना आदि सब कुछ अब जनता के हाथ में आ रहा है। इन सब बातो सफलता के लिये यह आवश्यक है कि जन-साधारण मे अपने अधि कारो तथा कर्त्तव्यो के पालन की समुचित क्षमता हो। जब जनता ने ब्रह्मा का काम अपने जिम्मे लिया है तो उसे ब्रह्मा के समान ही चतुर होना पड़ेगा।

दूसरे, आज के विधान प्रत्येक व्यक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। एक ग्रामीण से लेकर प्रतिष्ठित नागरिक तक सब को राज्य के संपर्क में आना पड़ता है। अतः यह अनुभव किया गया है कि शासन के सञ्चालन में भाग लेने के योग्य होने के लिये जन-साधारण को इस विषय की जानकारी होनी चाहिये। जब एक व्यक्ति को वोट देने का अधिकार दिया गया है, तो वोट के सद्-उपयोग की बुद्धि भी उसमें होनी चाहिये। जब किसी व्यक्ति को प्रबन्ध के लिये चुना गया है, तो प्रबन्ध की योग्यता भी उसमें होनी चाहिये।

इस क्रियात्मक आवश्यकता को पूरा करने के लिये ही इस नागरिक विज्ञान की सृष्टि की गई है। इसके अनुसार प्रत्येक नागरिक को अपने

निवास स्थान—ग्राम या नगर—के प्रबन्ध मे, तथा राष्ट्र के शासन मे भाग लेने के योग्य बनाना अभीष्ट है। एक शब्द मे प्रत्येक व्यक्ति मे राष्ट्रीय भावना या राजनैतिक चेतना को विकसित करना इसका उद्देश्य है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रत्येक सभ्य व्यक्ति मे 'सामाजिक चेतना' का होना भी अत्यन्त अपेक्षित है। जब तक मनुष्य मे समाज-हित या लोक-हित की भावना जागृत नहीं होती, जब तक उसका दृष्टि-कोण स्व-अर्थ तक ही सीमित रहता है, तब तक वह शासन-विधान जैसे सर्व-हित-कारी कार्यों मे भाग लेने के योग्य नहीं समझा जा सकता। सामाजिक चेतना का अर्थ यह है कि मनुष्य यह अनुभव करे कि मैं समाज पर आश्रित हूं और समाज के बिना मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। वह यह भी समझे कि समाज का सारा कार्य सहयोग और सह-कारिता से चल रहा है। व इस योग्य हो कि समाज-हित को सर्वोपरि समझ सके, अप हित से दूसरों के हित का अधिक ध्यान रख सके और लोक हित में स्व-हित की अनुभूति कर सके। उसके लिये यह भी जरूर है कि वह अपने विचार या अपनी राय को बहुमत मे विलीन कर सके। अपने प्रतिपक्षी की राय का पूरा मान कर सके और उस पर भी गम्भीरता से विचार कर सके।

इस सामाजिक भावना की प्राप्ति के लिये यह भी जरूरी है कि मनुष्य शिक्षित हो। विद्या, शिक्षा, आत्म-संयम और कर्तव्य-परायणता के गुण उसमें विद्यमान हो। उसका शरीर स्वस्थ हो, मन सुसंस्कृत और बुद्धि तीव्र हो। उसमें मनन शक्ति हो जिस से वह चिन्तन कर सके, सद्-असद् का विवेक कर सके और निष्पक्ष

ह सके। इन सब के साथ उसे अर्थ-शास्त्र का भी साधारण परिज्ञान होना चाहिये। वह अपनी, अपने समाज की, अपने नगर और राष्ट्र की आर्थिक समस्याओ को समझ सके और उनकी पूर्ति कर सके।

इस प्रकार परोक्ष रूप से नागरिक विज्ञान का सम्बन्ध राज्य-तंत्र, राजनीति, समाज-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, निति-शास्त्र, धर्म तथा आचार-शास्त्र, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य-शास्त्र एवं शिक्षा-शास्त्र आदि सभी उपयोगी शास्त्रो से है। एक सभ्य व्यक्ति या नागरिक के जीवन को सर्वाङ्गीण बनाने के लिये जो कुछ भी जानना अपेक्षित है, उसका समावेश नागरिक विज्ञान में किया गया है। एक प्रकार से 'विशेपज्ञो की सम्पत्ति' समझे जाने वाले इन शास्त्रों के आवश्यक तथा सर्व-साधारणोपयोगी सामान्य परिज्ञान को लेकर पृथक् रूप से इस नागरिक विज्ञान की सृष्टि की गई है। एक शब्द मे यह विज्ञान, एक नागरिक में शील का निर्माण करने के लिये सब उपयोगी शास्त्रों का 'सर्व-साधारणी-करण मात्र है। "नागरिक के लिये उपयोगी विज्ञान" के अर्थ मे ही इसे नागरिक विज्ञान कहते हैं। एक प्रसिद्ध लेखक के शब्दों में 'नागरिक विज्ञान मनुष्य को सब-कुछ का कुछ-कुछ और कुछ-कुछ का सब-कुछ परिज्ञान कराता है'।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से नागरिक-विज्ञान की शिक्षा जहां प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान-कोश में पुष्कल और उपयोगी वृद्धि करती है—उस की साधारण जानकारी को बढ़ाती है, उस के दृष्टि-कोण को विस्तृत करती है—वहां देश के नवयुवकों में व्यक्ति-गत शील के निर्माण और राष्ट्रीय भावो की जागृति के लिये भी परम उपयोगी है। यह स्वराज्य और देश-भक्ति की नींव है। शिष्टता, सभ्यता और सामाजिकता की प्रथम सीढ़ी है। इस से भी बढ़ कर—राष्ट्रवाद से भी ऊपर—विश्वभर में, मनुष्य-

निवास स्थान—ग्राम या नगर—के प्रबन्ध मे, तथा राष्ट्र के शा
मे भाग लेने के योग्य बनाना अभीष्ट है। एक शब्द में प्रत्येक व्य
मे राष्ट्रीय भावना या राजनैतिक चेतना को विकसित करना इस
उद्देश्य है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रत्येक सभ्य व्यक्ति मे 'सामाजि
चेतना' का होना भी अत्यन्त अपेक्षित है। जब तक मनुष्य में समा
हित या लोक-हित की भावना जागृत नहीं होती, जब तक उस
दृष्टि-कोण स्व-अर्थ तक ही सीमित रहता है, तब तक वह शास
विधान जैसे सर्व-हित-कारी कार्यों मे भाग लेने के योग्य नहीं सम
जा सकता। सामाजिक चेतना का अर्थ यह है कि मनुष्य य
अनुभव करे कि मैं समाज पर आश्रित हूँ और समाज के बि
मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। वह यह भी समझे कि समाज क
सारा कार्य सहयोग और सह-कारिता से चल रहा है। व
इस योग्य हो कि समाज-हित को सर्वोपरि समझ सके, अप
हित से दूसरों के हित का अधिक ध्यान रख सके और लोक
हित मे स्व-हित की अनुभूति कर सके। इसके लिये यह भी जरूर
है कि वह अपने विचार या अपनी राय को बहुमत मे विलीन
कर सके। अपने प्रतिपक्षी की राय का पूरा मान कर सके और
उस पर भी गम्भीरता से विचार कर सके।

इस सामाजिक भावना की प्राप्ति के लिये यह भी जरूरी है कि
मनुष्य शिक्षित हो। विद्या, शिक्षा, आत्म-संयम और कर्तव्य-परायणता
के गुण उसमें विद्यमान हों। उसका शरीर स्वस्थ हो, मन सुसंस्कृत
और बुद्धि तीव्र हो। उसमें प्रबल मनन शक्ति हो जिस से वह हित-
अहित का निर्णय कर सके, सद्-असद् का विवेक कर सके और निष्पक्ष

सके। इन सब के साथ उसे अर्थ-शास्त्र का भी साधारण परिज्ञान होना चाहिये। वह अपनी, अपने समाज की, अपने नगर और राष्ट्र की आर्थिक समस्याओ को समझ सके और उनकी पूर्ति कर सके।

इस प्रकार परोक्ष रूप से नागरिक विज्ञान का सम्बन्ध राज्य-तंत्र, राजनीति, समाज-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, निति-शास्त्र, धर्म तथा आचार-शास्त्र, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य-शास्त्र एवं शिक्षा-शास्त्र आदि सभी उपयोगी शास्त्रो से है। एक सभ्य व्यक्ति या नागरिक के जीवन को सर्वाङ्गीण बनाने के लिये जो कुछ भी जानना अपेक्षित है, उसका समावेश नागरिक विज्ञान में किया गया है। एक प्रकार से 'विशेषज्ञों की सम्पत्ति' समझे जाने वाले इन शास्त्रो के आवश्यक तथा सर्व-साधारणोपयोगी सामान्य परिज्ञान को लेकर पृथक् रूप से इस नागरिक विज्ञान की सृष्टि की गई है। एक शब्द में यह विज्ञान, एक नागरिक में शील का निर्माण करने के लिये सब उपयोगी शास्त्रों का 'सर्व-साधारणी-करण मात्र है। "नागरिक के लिये उपयोगी विज्ञान" के अर्थ मे ही इसे नागरिक विज्ञान कहते हैं। एक प्रसिद्ध लेखक के शब्दों में 'नागरिक विज्ञान मनुष्य को सब-कुछ का कुछ-कुछ और कुछ-कुछ का सब-कुछ परिज्ञान कराता है'।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से नागरिक-विज्ञान की शिक्षा जहां प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान-कोश में पुष्कल और उपयोगी वृद्धि करती है—उस की साधारण जानकारी को बढ़ाती है, उस के दृष्टि-कोण को विस्तृत करती है—वहां देश के नवयुवकों में व्यक्ति-गत शील के निर्माण और राष्ट्रीय भावो की जागृति के लिये भी परम उपयोगी है। यह स्वराज्य और देश-भक्ति की नींव है। शिष्टता, सभ्यता और सामाजिकता की प्रथम सीढ़ी है। इस से भी बढ़ कर—राष्ट्रवाद से भी ऊपर—विश्वभर में, मनुष्य-

सत्ताएँ व्यर्थ हैं। ऐसी बदलती हुई परिस्थिति मे प्रत्येक [illegible] युवक को अपने राष्ट्र और राज्य के मामला से जानकारी [illegible] वांछनीय है। इस क्रियात्मक कठिनाई को अनुभव करके ही अब भारतीय शिक्षा-क्रम मे भी इस विषय को स्थान दिया गया है। पर खेद है कि अभी हमारे शिक्षाधिकारियों ने इसे वह महत्व नहीं दिया, जो पाश्चात्य शिक्षाशास्त्री इसे दे रहे हैं।

इस विषय के विद्वानों ने इस बात को भी अनुभव किया है कि प्रौढ़ और वयस्क मनुष्यों की ढीली आदतों का बदलना कठिन होता है। 'सामाजिक भावना' का विकास बालकों मे सुगमता से हो सकता है। आज के बालक ही कल को युवक होंगे और परसों वे ही देश के कर्णधार बनेंगे। अतः उनके विचारानुसार नागरिक शिक्षा का प्रारम्भ बालक-पन से ही होना चाहिये।

बालकों के लिये 'नागरिक शिक्षा' का क्या स्वरूप हो इस विषय में अमरीका के श्री मार्क (Mr. Thiselton Mark) महोदय ने 'बोर्ड आफ एजुकेशन' की स्पेशल रिपोर्ट्स के दसवें भाग में "अमरीका के स्कूलों मे नागरिक शिक्षा" के शीर्षक से अपने विचार यों प्रकट किये हैं। वे निम्न हैं—"यह अनुभव किया गया है कि बालकों के लिये 'नागरिक शिक्षा" की पुराने ढंग की पुस्तकें जो राजकीय तथ्यों का संग्रह-मात्र ('compendum of governmental facts") हैं—बहुत उपयुक्त नहीं हैं। इन राजकीय [illegible] की अपेक्षा [illegible] प्रबल नागरिक भावना [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

होकर शासन सम्बन्धी बातो मे भाग लेने के योग्य होंगे, तब तक शायद इन राजकीय तथ्यो में आकाश-पाताल का अन्तर होगा। अतः उन की सम्मति यह है कि बालकों के लिये लिखी जाने वाली पुस्तको मे राजकीय तथ्यो के सूक्ष्म विस्तार की ... शासन-तंत्र के मौलिक लक्षण (elementary definitions) और स्थायी ढांचे की रूप-रेखा मात्र ही पर्याप्त समझनी चाहिये। 'अन्तर्जातीय मोरल एजुकेशन कांग्रेस, के प्रथम अधिवेशन में लार्ड अवेबरी (Lord Avebary) ने भी इसी प्रकार के भावो को प्रगट किया है। उनका कथन है कि 'मनुष्य को राष्ट्रीय बातो में भाग लेने के योग्य बनाने के लिये पहले उस के 'सामाजिक दृष्टि-कोण' को विस्तृत करना नितान्त आवश्यक है।

इस से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक श्रेणियों के बालको के लिये इस विषय पर जो भी पुस्तक लिखी जाय, उस में कोरे राजकीय तथ्य और उन के सूक्ष्म विस्तार की तालिकाएं ही न होनी चाहिये। उन में इस बात पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये कि बच्चों में एक प्रबल सामाजिक भावना प्रस्फुरित हो।

इसी अभिप्राय से प्रस्तुत पुस्तक में उक्त विशेषज्ञ महानुभावो की सम्मति का यथायोग्य उपयोग करने का पूर्ण यत्न किया गया है। इसमें 'सामाजिक भावना' को उत्पन्न करने की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। राजकीय तथ्यो में मूल लक्षण और 'स्थायी ढांचे की रूपरेखा' का ही निदर्शन कराया गया है। इसमें जो कुछ लिखा गया है, वह भारतीय दृष्टि-कोण से और भारतीय जीवन के उदाहरणों के प्रकाश में लिखा गया है। इसके लिखने में इस बात को भी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया गया कि यह पुस्तक हिन्दी के प्रारम्भिक विद्यार्थियों के

लिये लिखी जा रही है। मुझे कई वर्षों के निरन्तर साक्षात संपर्क कारण, इन विद्यार्थियों की मानसिक सज्जता का सूक्ष्म अध्ययन क का पर्याप्त अवसर मिला है। अतः विषयों के निर्धारण तथा प्रतिपाद शैली में उनकी मनःशक्तियों और बौद्धिक क्षमता का विशेष ध्यान र गया है।

हिन्दी में तो इस विषय की पुस्तकों का प्रायः अभाव सा ही है। अंग्रेजी में भी जो पुस्तकें लिखी गई हैं, उनमें राजकीय 'तथ्यों' के संग्रह में बहुत परिश्रम किया गया है और सामाजिक अंश की उपेक्षा की गई है। विदेशी लेखकों द्वारा लिखी हुई पुस्तकें भारतीय नागरिकता के लिये कोई बहुत उपयोगी नहीं हैं। अतः इस पुस्तक की रूपरेखा के निर्माण में मुझे स्वयं ही सब कुछ निर्धारण करना पड़ा है।

मेरी यह पुस्तक मेरे देश के बालकों के लिये कितनी उपयोगी सिद्ध होगी, इस बात का निर्णय मैं विज्ञ पाठकों पर ही छोड़ता हूँ। इस पुस्तक से यदि हिन्दी के छात्रों और हिन्दी के पाठकों के साधारण परिज्ञान में कुछ भी वृद्धि हो सकी और इस नूतन विषय के अध्ययन के प्रति उनका दृष्टि-कोण कुछ भी विस्तृत हो पाया एवं राष्ट्रीय तथा नागरिक भावना का तनिक भी विकास हो सका, तो मैं अपने परिश्रम को पूर्ण सफल समझूँगा।

—रघुनन्दन

१-८-४१

नागरिक-शिक्षा

समाज-तंत्र

मनुष्य और समाज

मनुष्य स्वभावतः एक सामाजिक प्राणी है। संसार के किसी प्राणी को अपनी स्थिति, रक्षा और वृद्धि के लिये समाज की इतनी अपेक्षा नहीं, जितनी मनुष्य को है। प्रकृति ने पशु-पक्षियों को, यहां तक कि कीट-पतगों तक को अपने जीवन की रक्षा के साधनों से सुसज्जित करके संसार में भेजा है। किसी को सींग, किसी को दांत, किसी को डक और किसी को नाखून प्रकृति की ओर से मिले हुए हैं। वे अपनी रक्षा के लिये किसी के मुहताज नहीं। वे अपने रहन-सहन, पोशाक, भोजन और इतर सुख-सामग्री के लिये किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं रखते। गौ और बकरी का बच्चा पैदा होते ही चलने फिरने लग जाता है। बन्दर का बच्चा जन्म से ही तैरना जानता है। उन्हें रहने के लिये न घरों की जरूरत है, न कपड़ों की, न दूसरों के बनाए हुए भोजन की और न बीमारी की हालत में डाक्टर की। उनकी आवश्यकताएं उनके अपने अधीन हैं।

पर मनुष्य जो अपने आप को ससार के सब जीवों से श्रेष्ठ मानता है, इस अंश में अधूरा है। इसे प्रकृति ने न तो सींग आदि के समान

अपनी रक्षा का कोई साधन ही दिया है और न ऐसा सुदृढ़ बनाया कि वह बिना किसी दूसरे की सहायता के जीवित रह सके, चल-फिर सके, या खा-पी सके। इसे अपने पालन-पोषण के लिये, खान-पान के लिये, रहन-सहन के लिये, वेष-पहिरावे तथा ज्ञान-विज्ञान के लिये सदा अपने साथियों की आवश्यकता रहती है; मनुष्य का बच्चा पैदा होते ही दूसरों का मुहताज होता है। यदि माता अपनी अगाध ममतामयी सेवा-शुश्रूषा से उसका पालन न करे तो उसका संसार में जीवित रहना भी असंभव हो जाय। मनुष्य के बच्चे को जितनी दूसरों की सहायता की आवश्यकता है, उतनी और किसी जन्तु के बच्चे को नहीं।

कई बार मनुष्य घमण्ड में आकर यह सोचने लगता है कि मैं "अपना कमाता हूँ, अपना खाता हूँ, मुझे दूसरे साथियों की क्या ज़रूरत है। मेरी बिरादरी या मेरा समाज मेरी क्या सहायता करता है। मैं उनके बिना भी जीवित रह सकता हूँ"। पर यह भ्रम है। मनुष्य दूसरों की सहायता के बिना एक पग भी नहीं चल सकता। एक छात्र जो घर से विद्यालय तक अपनी पुस्तकें स्वयं उठा कर पैदल स्कूल पहुँचा है, हम समझते हैं, यह भी वह दूसरों की सहायता से कर पाया है। अपने असंख्य भाइयों के अनन्त परिश्रम का उसने लाभ उठाया है। जिस सड़क पर वह चल कर आया है, उसके बनाने के लिये न जाने कितने मनुष्यों ने दिन रात काम किया है। जिन हथियारों से वह बन पाई है उनके बनाने में और उनके लिये लोहा खान से निकालने में न जाने [illegible] दिये। इसी प्रकार एक बालक जिस कमीज को पहनता है उसमें भी असंख्य मनुष्यों के परिश्रम का फल निहित है। कपास को [illegible] करना, [illegible] बनाना, फिर उसे सुई-धागे

इत्यादि से सीना--सब कुछ उस के लिये दूसरो ने किया है। एक कमीज पहन कर वह अवश्य दूसरो के परिश्रम से लाभ उठा रहा है।

यदि मनुष्य अपना हर काम स्वयं करने लगे, तो शायद उस की शक्ति और प्रवृत्ति का क्षेत्र बहुत ही संकुचित हो जाय। वह पशुओ के समान अपनी जीवन-सम्बन्धी आवश्यकताओं के अतिरिक्त और कुछ न कर पाए। यदि धोबी हमारे कपड़े साफ न करे, यदि चमार जूता न बनाए, यदि घर मे हमारी माता रोटी न बनाए, यदि नौकर बरतन साफ न करे, और यदि ये सब काम हमे स्वयं करने पड़े, तो प्रत्येक बालक सोच सकता है कि उस की पढ़ाई के लिये कितना समय मिल सकता है। इस प्रकार प्रत्येक बालक के पढ़ाई करने और उसके द्वारा बड़े बनने मे उन सब धोबी, चमार, तथा नौकर आदि का पर्याप्त हाथ है। उन सब के परिश्रम का उस ने फल उठाया है। इस से यह स्पष्ट है कि मनुष्य का यह अभिमान मिथ्या है कि मैं अकेला रह सकता हूं। मनुष्य तो सदा छोटे छोटे कामो मे और आत्मरक्षा और वृद्धि आदि बड़े बड़े कामो में भी समाज की सहायता के आश्रित है। पशु-पक्षियों से मनुष्य इस अंश मे हीन है।

पर मनुष्य ने अपनी इस दुर्बलता की पूर्ति 'सामाजिक जीवन' से की है। 'सामाजिक जीवन' पशुओं में भी है सही, पर उन मे इतना सापेक्ष नही जितना मनुष्यो मे। इस से जहां मनुष्य की उपर्युक्त कमी की पूर्ति होती है, वहां इस के जीवन की सारी सरसता, सुख, आनन्द और माधुर्य का कारण भी सामाजिक जीवन ही है। समाज से ही इसे जीवन मिलता है, समाज से ही बुद्धि एवं शक्ति मिलती है, समाज से ही इस की रक्षा होती है और समाज ही इस की वृद्धि और समुन्नति का कारण है। संक्षेप में अकेला व्यक्ति इस अनन्त संसार में तिनके के

समान अकिञ्चित्कर है और समाज के संपर्क में आकर ही वह स कुछ है। एक शब्द में मनुष्य के लिये सब कुछ उस की समाज है।

यह बात जहां मनुष्यमात्र के लिये सर्वदा और सर्वत्र सत्य वहां आज के मनुष्य के लिये तो यह अत्यन्त आवश्यकता औ अनिवार्य हो गई है। आज का मनुष्य तो बिलकुल ही समाज प आश्रित है। वह एक कल के पुरजे के समान है जिसकी उपयोगि केवल कल से जुड़े रहने से ही है। आज के मनुष्य क अधिकार, उस समाज के अधिकारों में हैं। आज के मनुष्य की मुक्ति उस के समा की मुक्ति में है। समाज से निकल कर उस का कोई मूल्य नहीं,—व सर्वथा नगण्य है।

समाज क्या है ?

साधारणतया 'व्यक्तियों के समुदाय' को समाज कहते हैं। पर य लक्षण ठीक नहीं। इस पर थोड़ा विचार करना होगा। समुदाय दो प्रकार के होते हैं। चावलोंका ढेर या पत्थरों का समूह एक प्रकार का समुदाय है और बाईसिकल या मनुष्य का शरीर दूसरी प्रकार का समुदाय है, पहले में सभी चावल एक दूसरे की आवश्यकता के बिना 'निरपेक्ष रूप' से जमा हुए हैं। पर दूसरे में भिन्न २ अवयव एक दूसरे की आवश्यकता रखते हुए 'सापेक्ष भाव से आपस में मिले हुए हैं और वे सब मिल कर एक पृथक् 'समष्टि रूप' पदार्थ को उत्पन्न करते हैं।

अब ज़रा फिर विचार कीजिये। चावलों के ढेर में से एक चावल को उठा कर फेंक दीजिये या तोड़ डालिये। इस से शेष चावलों को क्या हानि पहुंचेगी—या उन पर इस का क्या प्रभाव होगा? आप कहेंगे कुछ भी नहीं। ठीक है, चावलों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं। वे

क दूसरे से निरपेक्ष हैं। अब वाइसिकल की चेन की एक कड़ी तोड़ डालिये, या वालट्यूब को उठाकर फेंक दीजिये, फिर देखिये वाइसिकल चलता है या नहीं। किसी बालक के पाओं में चोट लग जाने से आँखों से आंसू निकल आते हैं—ज्वर चढ़ जाता है—सारा शरीर निकम्मा हो जाता है और बहुधा देखा गया है कि एक अङ्ग के घाव से कई बार मृत्यु हो जाती है। इस का अर्थ यह है कि वाइसिकल या शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग एक दूसरे से मिले हुए हैं। उन्हे एक दूसरे की आवश्यकता है। एक को दूसरे से सहानुभूति है। एक के निकम्मा होने से सारा शरीर निकम्मा हो जाता है—अपना काम बन्द कर देता है।

अब प्रश्न यह है कि "मनुष्य-समाज" व्यक्तियों का किस प्रकार का समुदाय है? क्या वह चावलों के ढेर के समान परस्पर निरपेक्ष व्यक्तियो का समूह है—या शरीर के अङ्गो के समान परस्पर सङ्गठित और सापेक्ष व्यक्तियो का समूह है।

इस प्रश्न के उत्तर के लिये मनुष्य-समाज के कार्य-कलाप या स्वभाव पर भी थोड़ा विचार करना होगा। परिवार में एक बच्चा बीमार हो जाता है। घर भर का सारा सुख-आराम छूट जाता है। छोटे-बड़े सभी बच्चे की बीमारी के प्रतिकार में जुट जाते हैं। यह क्यो? स्कूल में एक शरारती लड़का दूसरे निरपराध लड़के पर अत्याचार करता है। शेप लडके इसे नही सह सकते। वे सब मिल कर उसको पीटते हैं, या हेड-मास्टर को सूचना देते हैं। हेड-मास्टर महाशय उस शरारती लडके को उचित दण्ड देते हैं। यह क्यो? नगर में एक पागल कुत्ता किसी को काट खाता है। शहर भर के साहसी युवक उसके पीछे हो जाते हैं और उसे मार डालते हैं। यह क्यो? पिछले दिनो कोइटा में भूकम्प आया, या हिसार में दुर्भिक्ष पड़ा। सारा प्रान्त और देश

उनकी सहायता के लिये उमड़ पड़ा। यह क्यों? कभी कभी किसी देश में राज्य की ओर से कोई अत्याचार होता है। सारे देश के नर नारियों में उसके प्रतिकार के लिये प्रबल आन्दोलन की लहर पैदा हो जाती है। यह क्यों?

यह सब इस लिये कि मनुष्य-समाज एक संगठित शरीर के समान है, जिसके एक अङ्ग पर आपत्ति आने से सारे अङ्ग विकल हो जाते हैं। पत्थरों के ढेर में से एक पत्थर उठाकर फेंक देने से जैसे बाकी के पत्थरों पर कोई प्रभाव नहीं होता, यह बात मनुष्य-समाज में नहीं है। यहां एक का प्रभाव सब पर होता है।

अब एक और उदाहरण पर भी विचार कीजिये। पिछले कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार में हैजे का रोग फूट पड़ा। एक यात्री वहां से हैजे के परमाणु लेकर अपने गांव को लौट आया। वहां उस एक की बीमारी के कारण सारे गांव में हैजा फूट पड़ा और जो वहां नहीं गये थे, वे भी इस महामारी के चंगुल में आ फँसे और कई मर गए। एक मनुष्य के कर्म का फल सब को भोगना पड़ा।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि मनुष्य समाज में यही नियम काम करता है "एकः कर्माणि कुरुते, फलं भुङ्क्ते महाजनः." एक के कर्म का फल बहुतों को भोगना पड़ता है। अब पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर स्पष्टतया समझ में आ गया होगा कि मनुष्य समाज पत्थरों के ढेर की नाई का समूह नहीं, अपितु वह परस्पराश्रित परस्पर सापेक्ष व्यक्तियों का समुदाय है। वस्तुतः मनुष्य-समाज एक वृहद् और विराट शरीर है इसका प्रत्येक व्यक्ति अङ्ग-प्रत्यङ्ग स्थानी है। संसार में 'मनुष्यों का समुदाय' समाज नहीं, अपितु "मनुष्यों का संगठन" (सं+गठन = [illegible]) [illegible] मनुष्य समाज का ठीक स्वरूप है।

समाज का विकास

समाज की उत्पत्ति का इतिहास चाहे कुछ भी हो, यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि मनुष्य को 'स्वाभाव' और 'आवश्यकता' दोनों ने ही समाज बना कर रहने के लिये बाध्य किया है। प्रकृति ने मनुष्य को इस प्रकार का 'मन' दिया है जो समाज में ही रहना पसंद करता है। उसे अकेले रहना अच्छा नही लगता। अपने साथियो के साथ मिल कर रहने में उसे सुख और प्रसन्नता प्रतीत होती है। इस के विरुद्ध अकेला रहने में वह दुःख का अनुभव करता है। मनुष्य की यह स्वभाविक मनोवृत्ति समाज-संगठन का मूल और आदि कारण है।

न केवल मनोवृत्ति अपितु 'आवश्यकता' के अनुरोध ने भी मनुष्य को समाज की ओर अग्रसर होने में बलवत् बाध्य किया है। मनुष्य की खान-पान, रहन, सहन, वेष-भूषा और कार्य-व्यवहार सम्बन्धी सभी आवश्यकताएं ऐसी हैं जिन की पूर्ति मनुष्य अकेला रह कर नहीं कर सकता। इस प्रकार मनोवृत्ति की प्रेरणा और आवश्यकता के प्रबल अनुरोध से मनुष्य समाज का जन्म हुआ है।

मानवीय जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही हम मनुष्य को टोलियों या 'गिरोहों' में मिल कर घूमता हुआ पाते हैं। इस से पूर्व का कोई समय—जब मनुष्य अकेला ही सब कुछ करता हो—न तो इतिहास में विद्यमान है, न कल्पना में*। इस समय उदर-पूर्ति के अतिरिक्त मनुष्य का और कोई उद्देश्य प्रतीत नहीं होता। ये प्रारम्भिक 'गिरोह' भी

*मनुष्य की उत्पत्ति का काल्पनिक इतिहास भी 'आदम' और 'हव्वा' दो से प्रारम्भ होता है। मानो परमात्मा ने ही उन्हें जोड़े के रूप में उत्पन्न किया हो। वस्तुतः मनुष्य समाज का आधार यही "जोड़ा" है।

उदर-पूर्ति के निमित्त से ही बनाये गये होंगे। सब मिल कर वन्य पशु का शिकार करते होंगे और इस प्रकार मारे हुए जीवों से ही उन जठराग्नि की शान्ति होती होगी। कभी कभी हिंस्र पशुओं से इन का यु भी हो पड़ता होगा उस समय 'परस्पर-सहायता' के द्वारा ये लो पशुओं पर विजय पाते होंगे। एक दूसरे की सहायता या समवेद का भाव तभी से मानवीय हृदय ने सीखा है।

सामान्यतः पशु अधिक संख्या में मिलते रहे होंगे। इससे सब आवश्यकता पूरी होती रही होगी। पर कभी कभी पशु कम मिलने पर म के 'आहार' के लिये अपेक्षित मात्रा में कुछ कमी होने के कारण पशु के 'बँटवारे' में कुछ झगड़ा भी अवश्य पैदा होगा। झगड़े में "अधिक और न्याय" आदि के नाम पर भी कुछ चर्चा चलती होगी, अ शायद आपस में निपटारा हो जाता होगा; या कभी कभी दो पक्ष हे पर युद्ध भी छिड़ जाता होगा। इस प्रकार "सामग्री या पूँजी विभाग", अधिकार-चर्चा, और न्याय-अन्याय का विवेक और सम्भव परस्पर-निर्णय (arbiteration) और अधिकारों की माँग अन्यता में दृढ़ विश्वास के कारण युद्ध करना आदि भावों के बी उसी समय से मनुष्य के हृदय में आरोपित हुए हैं।

झगड़े-टंटे और युद्ध के दुष्परिणामों से तंग आकर उन्हों झगड़े के कारणों को दूर करने तथा झगड़ों का निपटारा करने के लि कुछ छोटे छोटे नियम भी निर्धारित कर लिये होंगे। जैसे "कोई कि की हिंसा न करे। कोई किसी की चोरी न करे। सब परस्पर सत्य बोलें कोई किसी को धोखा न दे। झूठ न बोले विश्वास-घात न करे। क दूसरों की वस्तुओं को अपनी वस्तुओं के समान समझें इत्यादि कारण कि इन पर आचरण करने से झगड़े की सम्भावना बहुत क

ी जाती है । इसके साथ ही कुछ ऐसे भी नियम निर्धारित कर लिये ागे जिनसे जीवन सुखी और आनन्दमय हो । जैसे सब एक दूसरे की हायता करें । सब प्रेम और भ्रातृ-भाव से रहें । छोटे बडों का कहा ानें । बड़े छोटों के साथ अन्याय न करें इत्यादि ! ये और इस प्रकार ः अन्य नियम शनैः शनैः बनते और बढ़ते गये होंगे । इन सब नियमों ा धारण करना उन्होंने सब के लिये आवश्यक निश्चित किया होगा ौर धारण करने के योग्य होने से ही इन सब नियमों का नाम "धर्म" ख दिया गया होगा । इस प्रकार समाजवाद के विकास के साथ— माज की आवश्यकता और उपयोगिता के अनुरोध से ही—कहे जाने ाले "धर्म" की भी नींव पड़ी । वस्तुतः धर्म समाजोपयोगी नियम- मूह के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं ।

शनैः शनैः पशुओं के समान घूमने की वृत्ति से ऊब कर मनुष्य ने क स्थान पर रहना प्रारम्भ किया होगा और जीवन-निर्वाह के लिए कृषि-कर्म का आश्रय लिया होगा । अब, गांव बस गए और कृषि-कर्म ः लिये पशु-पालन का महत्व अनुभव किया गया । कभी कभी ग्रामों में रस्पर भूप्रदेशों पर अधिकार की चर्चा भी चलती होगी जिसके नपटारे के लिये गांवो में चौधरियों का जन्म हुआ । एक ने एक चीज़ ी खेती की है तो दूसरे ने किसी दूसरी वस्तु का बीज बोया है । ावश्यकता के अनुरोध से एक वस्तु देकर दूसरी आवश्यक वस्तु ली ाने लगी । शनैः शनैः यह लेन-देन बढ़ता गया और इसी से मानो यापार की नींव पड़ी । मनुष्यों तथा सम्पत्ति की वृद्धि के साथ साथ ी गांव के चौधरियों के मन में अपनी शक्ति और धन को बढ़ाने ी आवश्यकता भी अनुभव होने लगी । इस प्रकार आवश्यकतानुसार हन सहन, आचार-व्यवहार, सब में परिवर्तन होने लगा । नई नई

आवश्यकताओं के साथ नये नये विधान उपस्थित होने लगे और धीरे धीरे मनुष्य-समाज इन सब अवस्थाओं में से होकर इस अवस्था पर पहुँचा है, जिस में कि वह आज है। आज के समाज के विधानों और आवश्यकताओं के स्वरूप में भले ही भेद हुआ हो, पर आधारभूत सिद्धान्त आज भी वही है।

सामाजिक संस्थाएँ

साक्षात् या परम्परा सम्बन्ध से मनुष्य जिन व्यक्तियों के संपर्क में आता है, वही उसका समाज है। इस प्रकार परिवार, बिरादरी, जाति और धार्मिक-संघ तथा ग्राम, नगर, प्रान्त, या राष्ट्र आदि समाज के भिन्न २ रूप हैं, जिन से मनुष्य साक्षात् संपर्क में आता है। यही उस की दुनिया है, यही उसका संसार है। इसके अतिरिक्त मनुष्यता के नाते से मनुष्य किसी न किसी रूप में संसार भर के साथ संपर्क में आता है। इसको यों समझना चाहिये। एक छोटे से ग्राम के मनुष्य को मलेरिया ज्वर आ जाता है। उसके लिये वह कुनीन खाता है। इस से कुनीन का आविष्कार करने, बनाने और बेचने वालों के साथ उस छोटे से ग्रामीण का परम्परागत संपर्क होता है—क्योंकि उन लोगों की वस्तु का वह उपयोग करता है। इसी प्रकार सुदूर इंग्लैंड में बैठे हुए कुनीन [illegible] का भी उससे संपर्क होता है क्योंकि वह अपनी वस्तु उसके पास बेच पाता है। इस आधार पर वैज्ञानिक आविष्कारों से [illegible] दूर [illegible] अपनी प्रयोग-शाला में परीक्षण कर के, [illegible] करते हैं—सारा संसार लाभ उठाता है। [illegible] का इलाज तब हुआ। और [illegible] [illegible], [illegible], अनाज, आदि तथा [illegible]

और शिक्षा आदि ऐसी चीजें हैं जिन के द्वारा मनुष्य संसार भर साथ संपर्क मे आता है। इस से स्पष्ट है कि मनुष्य-मात्र के परम्परा संबन्ध से सपर्क अवश्य होता है। दूसरे शब्दो में मात्र, मनुष्य मात्र की आवश्यकताओ और सुविधाओ का पूरक घटक है। इस प्रकार छोटे से परिवार या ग्राम से लेकर विश्व 'मनुष्य-समाज का भिन्न २ रूपों में विस्तार है।

इन सामाजिक सस्थाओ को दो भागो में बांट सकते हैं—एक सास्कृतिक, दूसरे भौगोलिक। सांस्कृतिक के भी दो भेद किये जा .. हैं—जन्म-मूलक और वृत्ति-मूलक। परिवार, बिरादरी, जाति, आदि जन्म मूलक सस्थाए हैं। स्कूल, कालेज, क्लब, भिन्न २ काम करने वालों के संघ, राजनैतिक पार्टियां तथा व्यापार मंडल एवं एक कारखाने मे काम करने वाले मजदूरो के संघ आदि २ वृत्ति-मूलक सस्थाए हैं। भौगोलिक में ग्राम, नगर, प्रान्त, देश, राज्य, साम्राज्य और विश्व-समाज आदि का अन्तर्भाव है। पाठको के साधारण परिचय के लिये 'समाज के इन भिन्न २ रूपो' का सक्षेप से वर्णन दिया जाता है। 26/10/45

परिवार

परिवार सामाजिक जीवन और शासन विधान का एक लघु चित्र है। सब से प्रथम मनुष्य अपने परिवार के संपर्क में आता है। मनुष्य की असभ्यावस्था मे पशुओ के समान परिवार की सस्था का बिलकुल अभाव था। पारिवारिक जीवन सभ्यता का सब से प्रथम सोपान है और धर्म, कर्म, संस्कार, सम्पत्ति, समाज, राज्य और साम्राज्य का मूल आधार है। पारिवारिक जीवन की नींव पर ही समाज और राज्य का सुदृढ़ और सुन्दर प्रासाद निर्मित हुआ है।

परिवार समाज की सब से छोटी इकाई है। एक विख्यात समाजशास्त्रज्ञ के शब्दों मे "परिवार सामाजिक" जीवन का एक शाश्वत और स्थायी स्कूल है, जहां मनुष्य परस्पर सहकारिता, सहयोग, एक दूसरे का हित, समवेदना, आज्ञापालन, त्याग, प्रेम, स्नेह, संयम, शील, और सदाचार आदि समाजोपयोगी महान् गुणों को ज्ञान और अज्ञात रूप मे सीखता है। परिवार एक महान् कोष है जिसमे पूर्वजों के आचार विचार का अक्षय निधि भावी सन्तति के उपयोग के लिये सुरक्षित रहता है। यह एक पवित्र मन्दिर है जिस मे पूर्वजो की आत्मा आधुनिक सन्तान के साथ साक्षात् सम्पर्क मे आती है। परिवार का सिद्धान्त है—"एक सब के लिये और सब एक के लिये"।

साधारणतया परिवार मे माता, पिता और भाई-बहिन होते हैं। भारत मे सम्मिलित परिवार भी हैं। इनमे पिता के माता-पिता, तथा पिता के भाइयों तथा अपने भाइयों के बच्चे तथा पत्नी, और दूसरे सम्बन्धी भी साथ रहते हैं। इन सब का परस्पर रक्त सम्बन्ध होता है। परिवार के प्रधान व्यक्ति की आज्ञा सब को माननीय होती है, और वही सब के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा आदि का जिम्मेदार होता है। परिवार की सम्पत्ति पर साक्षात् अधिकार उसी का है। संक्षेप मे वह अपने परिवार का प्रभु या राजा है।

भारतीय सम्मिलित परिवार एक प्रकार से आज कल के साम्यवाद (... ...) का एक छोटा सा निदर्शन है, जिस मे प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार परिवार की आर्थिक वृद्धि मे पूरा भाग लेता है और अपनी आवश्यकताओं को भी परिवारमें ही प्राप्त करता है। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वृद्ध (असमर्थ) हो, या बच्चा, चाहे अपाहिज हो या ... अस्वस्थ, उसके जीवन की साधारण आवश्यकता

की पूर्ति परिवार पर आश्रित है। उस के खान-पान और शिक्षा आदि की जिम्मावारी परिवार के मुखिया पर रहती है और वही सब विवाह आदि का भी प्रबन्ध करता है। एक प्रकार से परिवार व्यक्ति के जीवन की सुविधाओ और बुढ़ापे के सुख-आराम का करता है। एक विख्यात लेखक के शब्दो मे "भारतीय परिवार की संस्था आज कल के सभ्य देशो की इन्शोरेंस (कंपनियो का काम करती है"। आर्थिक दृष्टि से भी सम्मिलित मितव्ययिता की संस्था है। साथ रहने से निश्चय ही व्यय कम होता और सब को समान लाभ प्राप्त होता है।

साम्यवाद के समान सम्मिलित परिवार से एक हानि भी है वह है—व्यक्तित्व के विकास में बाधा। परिवार एक ही ढंग के आचार विचार और नियंत्रण के द्वारा 'नूतनता' मौलिकता और रुचि-स्वातंत्र्य के लिये कोई स्थान नहीं रहने देता। साथ ही सब की आवश्यकताओं की एक सी पूर्ति, होने से अधिक व्यक्ति के उत्साह तथा शक्तियों के विकास मे भी इस से सहायता नहीं मिलती। यही प्रधान कारण है कि आज सम्मिलित परिवार को पसंद नहीं किया जाता। नूतन परिस्थिति के साथ इस में भी परिवर्तन आ रहे हैं, और कहा नहीं जा सकता कि यह संस्था अपनी पुरातनता को कहां तक निभा सकेगी।

बिरादरी

परिवार से कुछ ढीली, पर अधिक व्यापक संस्था बिरादरी की है। यह आर्थिक रूप में पृथक् २ रहते हुए परिवारों की एक समष्टि है। सामाजिक कर्तव्यो के परिपालन और रीति-रिवाज आदि के आचरण के सम्बन्ध में बिरादरी का मनुष्य पर बहुत प्रभाव है। मग-सुख-दुःख,

सम-भोजना और साधारण हानि-लाभ सम्बन्धी कर्तव्य-शिक्षा बिरादरी का भी पर्याप्त भाग है। "बिरादरी का डण्डा" और "बिरादरी का फैसला" आज भी डर की वस्तु है। वर्तमान युग में नये वि[illegible] और नई शिक्षा के प्रभाव से अब यह संस्था शैथिल्य की ओर [illegible] रही है।

जाति

बिरादरी से और अधिक विस्तृत जाति की संस्था है। इस में जन्म के साथ कुछ २ कर्म का सम्बन्ध भी मिल गया है। जाति के सम्बन्ध में भी मनुष्य के कुछ कर्तव्य हैं जिन्हें 'जाति-धर्म' का नाम दिया जाता है। आज कल इस का गौरव भी शनैः २ क्षीण हो रहा है।

धार्मिक-संघ

एक धर्म के अनुयायियों का समुदाय धार्मिक संघ कहलाता है। इस में अनेक स्थानों के निवासी, अनेक कर्मों के करने वाले और अनेक वृत्तियों के उपजीवक 'धर्म', या 'विश्वास' या 'सिद्धान्त' की एकसूत्रता में [illegible] रहते हैं। सत्य, धर्म और न्याय के लिये आत्म-बलिदान आदि [illegible] कर के भी धर्म की रक्षा का भाव, [illegible] मनुष्य [illegible] है। मनुष्य धर्म के नाम पर [illegible] [illegible] में मनुष्य ने [illegible] [illegible] [illegible]

...। अब भी परस्पर प्रेम, ईमानदारी आदि जो कुछ भी मनुष्य में पाई ...ाती है, वह राजनैतिक शिक्षा के कारण नहीं, अपितु धर्म की ही ...ाज्ञा से है। धर्म ने ही व्यक्तरूप में विधि-निषेध रूप दो प्रकार के ...ियमों का निर्धारण किया है। जो गुण, तथा कर्म समाजहित के लिये ...ाभकारी हैं, वे विधि हैं। उन पर आचरण करना अनिवार्यरूप से ...त्य और आवश्यक है। जो दुर्गुण समाज-हित के विरुद्ध हैं—समाज-...रीर को हानि पहुँचाने वाले हैं—वे निषेध हैं। उनका न करना इतना ...ी आवश्यक है जितना विधि-नियमों पर आचरण करना।

...पर संकीर्णता, अदूर दर्शिता, असहिष्णुता आदि मनोविकारों के ...ारण मनुष्य ने धर्म के नाम पर पाप भी बहुत किये हैं—मनुष्य को ...नुष्य से पृथक् किया है, युद्ध किये हैं और रक्त की नदियां बहाई हैं। ...आज का शिक्षित समाज इस ओर अधिक विचार-शील होकर धर्म ...े घृणा करने पर उतारू हो गया है। पर वास्तविक धर्म कोई हेय वस्तु ...हीं। वह तो सामाजिक धारणा के लिये सदा अपेक्षित रहेगा। ...ास्तविक और व्यापक धर्म के नियमों के बिना केवल राजनैतिक दृष्टि-...ोण से तो मनुष्य महान् स्वार्थी, शुष्क-हृदय, अशान्त और पतित हो जायगा।

सांस्कृतिक संघ।

विद्या तथा शिक्षा के सम्बन्ध से स्कूल, विद्यालय, तथा साहित्यिक गोष्ठियां आदि हमारे समाज की भिन्न २ संस्थाएं हैं। क्लब, खेल की टीमें, तथा हास विलास सम्बन्धी गोष्ठियां मनोरञ्जन से सम्बन्ध रखती हैं। एक पेशा या एक प्रकार का व्यवसाय करने वालों के भी संघ बने हुए होते हैं। इन्हें प्राचीन काल में श्रेणी के नाम से पुकारा जाता था। ये अपने व्यवसाय-सम्बन्धी अधिकारों और सुविधाओं की

से भी गली मोहल्ले के साथ हमारे हानि-लाभ जुड़े हुए हैं। हमारा और हमारे बच्चों का स्वास्थ्य न केवल हमारे अपने मकान की सफाई पर निर्भर है, अपितु पड़ोसी के मकान और गली मोहल्ले की सफाई भी उसके लिये आवश्यक है।

गली मोहल्ले से ऊपर ग्राम या नगर हमारा समाज है। ग्राम निवासियो का परस्पर भ्रातृ-भाव और समय पर एक दूसरे की सहायता और सहयोग आदि ऐसी बातें हैं जिन में ग्राम-निवासी परस्पर आश्रित हैं और परस्पर उपकृत होते हैं। नगर मे यह कर्तव्य-परम्परा और भी बढ़ जाती है। वहां के काम भी परस्पराश्रितता और सहयोग से ही चलते हैं।

इसी प्रकार प्रान्त, देश या राष्ट्र तथा राज्य और साम्राज्य मनुष्य समाज के भिन्न २ रूप हैं। इन से भी मनुष्य अनन्त रूपों में उपकृत होता है और इनके प्रति भी उस के विशेष कर्तव्य हैं। पर उन सब का मूल और सारांश यही है कि मनुष्य अपने साथी, पड़ोसी एवं देशवासी को अपनी सेवा आदि से सदा 'सुखी' बनाने की चेष्टा करे। "अच्छा" बनाने की चेष्टा न करे। कारण कि 'अच्छापन' के समझने मे प्रायः भूल होती है और यह 'अच्छा बनाने" का भाव ही प्राय. मनुष्यों में वैमनस्य का कारण है। एक व्यक्ति समझता है कि मेरा विचार या मेरा सिद्धान्त 'अच्छा' है। वह दूसरे के विचार को गलत समझता है और उसे 'अच्छा' बनाना अपना कर्तव्य मान लेता है। बस दोनों कट्टरता से एक दूसरे का विरोध करते हैं। लड़ाई, झगड़ा, बखेड़ा खड़ा हो जाता है। धर्म के नाम पर इतिहास मे जितने युद्ध हुए हैं और रक्त की नदियां बही हैं, उन सब में यही मनोवृत्ति काम करती थी। अतः मनुष्य का ध्येय यह होना चाहिये कि मैं अपने साथी को 'सुखी' बनाने

रक्षा के लिये काम करते हैं। व्यक्तिगत या निजी जीवन से इन का विशेष सम्बन्ध नहीं। व्यापार-मण्डल, मजदूर-दल आदि इन के उदाहरण हैं। कहीं २ बहुत से मनुष्य मिलकर एक काम करते हैं। इन्हें सम्भूयसमुत्थान और आज कल की परिभाषा में 'कम्पनी' कहते हैं। रेल कंपनियां और बीमा कंपनियां इन के उदाहरण हैं।

ये सब संस्थाएं मनुष्य के लिये अपना २ समाज हैं। ये सब मनुष्य का अनेक उपकार करती हैं और मनुष्य इन का उपकार करता है। इस तरह परस्पराश्रितता और सम-उद्देश्य, सम-भावना, सम हानि-लाभ आदि के व्यापक नियमों पर इन का सृजन हुआ है।

भौगोलिक संस्थाएँ

भौगोलिक रूप में मनुष्य का समाज 'पड़ोसी' से प्रारम्भ होकर विश्व तक व्यापक है। पड़ोसी और गली मोहल्ले वाले हमारा मन में प्रथम स्थान रखते हैं। ज्यों ही बच्चा चलना फिरना सीखता है और अपने घर की चार दीवारों से बाहर निकलता है, वह पड़ोसी और गली-मोहल्ले के बच्चों से मिलता है। उनसे खेलता है और उनके गुण दोष सीखता है, जिनका प्रभाव जीवन भर अमिट रहता है। निःसन्देह मनुष्य के चरित्र-निर्माण और जीवन के निर्माण में उसके पड़ोस का विशेष प्रभाव पड़ता है।

[illegible] पड़ोसी के प्रति भी मनुष्य के विशेष कर्तव्य [illegible] पड़ोसी के हानि-लाभ का विशेष ध्यान रखना है [illegible] करती है कि वह स्वयं कष्ट [illegible] मिलना हो। [illegible] सार्व[illegible] है। सभ्य समाज में [illegible] जाता है। भौगोलिक दृष्टिकोण

से भी गली मोहल्ले के साथ हमारे हानि-लाभ जुड़े हुए हैं। हमारा और हमारे बच्चो का स्वास्थ्य न केवल हमारे अपने मकान की सफाई पर निर्भर है, अपितु पड़ोसी के मकान और गली मोहल्ले की सफाई भी उसके लिये आवश्यक है।

गली मोहल्ले से ऊपर ग्राम या नगर हमारा समाज है। ग्राम निवासियो का परस्पर भ्रातृ-भाव और समय पर एक दूसरे की सहायता और सहयोग आदि ऐसी बातें हैं जिन मे ग्राम-निवासी परस्पर आश्रित हैं और परस्पर उपकृत होते हैं। नगर में यह कर्तव्य-परम्परा और भी बढ़ जाती है। वहां के काम भी परस्पराश्रितता और सहयोग से ही चलते हैं।

इसी प्रकार प्रान्त, देश या राष्ट्र तथा राज्य और साम्राज्य मनुष्य समाज के भिन्न २ रूप हैं। इन से भी मनुष्य अनन्त रूपो में उपकृत होता है और इनके प्रति भी उस के विशेष कर्तव्य हैं। पर उन सब का मूल और सारांश यही है कि मनुष्य अपने साथी, पड़ोसी एवं देशवासी को अपनी सेवा आदि से सदा 'सुखी' बनाने की चेष्टा करे। "अच्छा" बनाने की चेष्टा न करे। कारण कि 'अच्छापन' के समझने में प्रायः भूल होती है और यह "अच्छा बनाने" का भाव ही प्रायः मनुष्यो में वैमनस्य का कारण है। एक व्यक्ति समझता है कि मेरा विचार या मेरा सिद्धान्त 'अच्छा' है। वह दूसरे के विचार को गलत समझता है और उसे 'अच्छा' बनाना अपना कर्तव्य मान लेता है। बस दोनों कट्टरता से एक दूसरे का विरोध करते हैं। लड़ाई, झगड़ा, बखेड़ा खड़ा हो जाता है। धर्म के नाम पर इतिहास में जितने युद्ध हुए हैं और रक्त की नदियां बही हैं, उन सब में यही मनोवृत्ति काम करती थी। अतः मनुष्य का ध्येय यह होना चाहिये कि मैं अपने साथी को 'सुखी' बनाने

की चेष्टा करूं, न कि 'विवादास्पदीभूत' 'अन्दा' बनाने का यत्न करूं।

विश्व-समाज

रंग और रक्त के अनेक भेद होने पर भी विश्व-समाज या संसार भर को अपना और समभाव का भाव नितान्त असंभव नहीं है। ऊपर इस बात का संकेत किया जा चुका है कि मनुष्यमात्र का संसार के मनुष्यमात्र के साथ विज्ञान, साहित्य, कला तथा शिक्षा आदि के द्वारा घनिष्ठ सम्पर्क है और 'परस्परं भावयन्तः' "वल्गु वल्गन्तः" का भाव सब मनुष्यों में पाया जाता है। आवागमन के साधनों की वृद्धि, व्यापार, शिल्प और औद्योगिक धन्धों की समुन्नति एवं साधारण सभ्यता के विकास के साथ साथ मनुष्य विश्व-जनीन भ्रातृभाव की ओर अग्रसर हो रहा है। कई बार यह स्तुत्य प्रयत्न भी किया जा चुका है कि इस विश्वता के भाव को ऐसा स्थायी रूप दिया जाय जिससे जातियों और राष्ट्रों में 'युद्ध' को असम्भव बना दिया जाय। 'लीग आफ नेशन्स' की स्थापना इस दिशा में विगत महासमर के पश्चात् किया गया इस ढंग का सबसे बड़ा प्रयत्न था। कई एक कारणों से लीग अपने उद्देश्य की सिद्धि में पूरी सफलता प्राप्त न कर सकी जितनी उससे आशा की जाती थी। यह बात नहीं कि लीग ने कुछ भी न किया हो, कुछ क्षेत्रों में उसे सफलता मिली, पर वह 'युद्ध' का सर्वथा अन्त न कर सकी [illegible] हाल ही [illegible] उसकी अन्य असफलताओं में [illegible]।

[illegible] और विज्ञान आदि के क्षेत्र में भी [illegible] है जो विश्वसमाज का [illegible] है।

प्रत्येक जाति तथा राष्ट्र की सदाचार भावनाएं प्रायः एक सी हैं। दुःखी के प्रति समवेदना, निर्बल की रक्षा, न्याय के आधार नि॰ तथा सचाई आदि ऐसी भावनाए हैं जो सब जातियों मे एक सी फिर उन में भ्रातृभाव की धारणा की स्वीकृति मे क्यो सदेह कि॰ जाय ?

भाषा-विज्ञान के विकास के साथ अब यह बात मानी जा रही है कि प्रायः सब जातियो की भाषा भी एक सी ही है। उन में प्रायः एक से नियम लागू होते हैं। यह बात सब जातियो में मानवता की एकता को प्रकट करती है।

अतः आज के सभ्य मनुष्य को आवश्यक है कि वह इस बात को समझ ले कि हम सब में मनुष्यता के आधार तत्व एक से हैं। हम सब एक ही पिता की संतान हैं। सारा विश्व भगवान् का एक परिवार है जिस में भाई-बहिन लड़ते भी हैं और प्रेम भी करते हैं। वे सब परस्पराश्रित हैं। उनकी अभिरुचियां भिन्न २ होते हुए भी वे एक विशाल परिवार के सदस्य हैं। रग, रक्त, वेष-भूषा, आचार-विचार और भाषा सम्बन्धी दिखाई देने वाले भेद केवल बाह्य आवरण हैं, जो देश-काल-सम्बन्धी परिस्थितियों के भेद, रुचि-भेद और आवश्यकता भेद के कारण बना लिये गये हैं। इन सब के अन्तस्तल मे एक ही मानवता की आत्मा निवास करती है।

यहां एक आशङ्का पर भी कुछ विचार कर लेना आवश्यक होगा। कई बार एक मनुष्य का आहार दूसरे का विष होता है। भारत का लाभ शायद कहीं पर इंगलैंण्ड की हानि प्रतीत हो और इंगलैंड का लाभ शायद जर्मनी की हानि प्रमाणित हो। तो फिर सम हानि-लाभ न होने से अपने २ हितों में विरोध या संघर्ष होने से एक विश्व-समाज

का भाव कैसे पनप सकता है ? आखिर, जहां मनुष्य ही मनुष्य का सब से उपयोगी मित्र और सहायक है, वहां मनुष्य ही मनुष्य का सब से भयङ्कर शत्रु भी तो है।

इस आशङ्का में वस्तुतः बड़ा बल है और यही विश्व-समाज के मार्ग में सब से बड़ी बाधा है। पर मनुष्य को इसका हल सोचना ही होगा। प्रथम तो दो चार बातों को छोड़ कर शेष बातों में इस 'लाभ संघर्ष' का प्रश्न ही नहीं उठता। हम अपने देश की हानि न करते हुए भी, अपने देश के सच्चे भक्त रहते हुए भी दूसरे देशों से भ्रातृ-भाव रख सकते हैं। जिन बातों में संघर्ष की सम्भावना है उन पर भी परस्पर मिल कर शान्त भाव से विचार करने पर कोई न कोई मार्ग निकल ही आता है। यह आवश्यक नहीं कि हर विरोध का निर्णय युद्ध के द्वारा ही किया जाय।

विज्ञान की दृष्टि से इस में कुछ हानि नहीं पड़ती। अपने सा[illegible] आदि का पोषण करता हुआ भी मनुष्य दूसरों को भोजन दे सकता है। यदि वह न भी दे, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह दूसरों का विरोधी है। उस में जितनी शक्ति और सामर्थ्य है, उसके अनुसार वह कार्य करता है। यह कार्य की मात्रा या शक्ति की न्यूनता का भेद है विरुद्धता का नहीं।

और [illegible] की एक सत्ता मान लिया तो वह एक विराट शरीर के समान हो गया। [illegible]

[illegible]

अवलम्बित है। जब समाज शास्त्र के आधार-नियमों का व्य . दृष्टि से प्रयोग किया जाय, तो 'हित विरोध' कोई चीज नहीं रह जाता 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त पर जब आचरण हो, तो विश्व-सम ज के भाव में बाधा नहीं पड सकती। सभ्य मनुष्य को इस स्वार्थ-पूर्ण कलुषित भावना से ऊपर उठना ही पडेगा अन्यथा उसकी मुक्ति नहीं। ये संघर्ष, ये युद्ध और जन-संहार तब तक नहीं रुक सकते, जब तक मनुष्य विश्व-समाज का स्वरूप स्थिर नहीं कर लेता, और दूसरे के अधिकारों और हितो को भी उतना ही आवश्यक नहीं समझने लगता, जितना वह अपने अधिकारों और हितो को समझता है। यदि मनुष्य की स्व-हित-भावना परार्थघातक न हो, तो कोई बखेडा नहीं पड़ता। इस के लिये पूंजीवाद और राजनीति के शुष्क दृष्टि-कोण को छोड़ कर विश्व-समाज के भाव में कुछ आध्यात्मिकता के भावो का भी समावेश करना होगा। इस के बिना इस मे न शान्ति और न सरसता आ सकती है।

हम तो 'विश्व-समाज' की भावना को मनुष्यमात्र से परे पशु-समाज तक भी विस्तृत होता देखना चाहते हैं। आखिर पशु-पक्षी भी मनुष्य का अनन्त हित करते हैं और उस के 'आराम' और सुख में असीम सहायता देते हैं। मनुष्य अपने जीवन में इनकी सहायता के भी आश्रित हैं। ये तो मरने के बाद भी अपने मांस और चमड़े आदि से मनुष्य का उपकार करते हैं। ऐसी अवस्था में 'परस्पर भावना' के सिद्धान्त के अनुसार क्या मनुष्य का यह कर्तव्य नहीं कि वह भी इनकी रक्षा करे। फिर पशु तो मनुष्य से कोई अधिकार भी नहीं मांगते। न अपने लिये सड़कों, पानी तथा प्रकाश आदि की सुविधाएं मांगते हैं, न कौंसिलों में सीटें मांगते हैंन,

इन सब व्यक्तियों ने एक २ काम बांट लिया है जो उनके जीवन की सारी आवश्यकताओं को पूरा करता है। ये सब दूसरो के लिये कुछ करते हैं और दूसरे इन के लिये कुछ करते हैं।

इसी प्रकार एक लेखक अपने लेख लिख कर समाज की ज्ञान-पिपासा को शान्त करता है और अपने विचारों के द्वारा समाज की सेवा करता है। ये गेहूँ पैदा करने वाले, मकान बनाने वाले और शाक-भाजी पैदा करने वाले तथा इतर अनन्त व्यक्ति उसकी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। यदि इस लेखक को दूसरो का सहयोग प्राप्त न हो, और इसे अपने सब काम स्वय करने पड़े, तो यह लेखक का काम नहीं कर सकता। सत्य तो यह है कि यह अपने सब काम स्वयं कर ही नही सकता। एक मनुष्य न सब कुछ सीख सकता है, न सब कुछ कर सकता है। यह लेखक भी ज्ञान के जिज्ञासुओ की आवश्यकता को पूरा करता है और वे इसे धन देते हैं, जिसे यह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वालो मे वृत्ति के रूप मे बांट देता है। इसी प्रकार एक उच्चाधिकारी, एक अध्यापक या राज-मंत्री आदि सब अपनी २ शक्ति और योग्यता के अनुसार समाज का महान् उपकार करते हैं और दूसरे लोग इन के जीवन की आवश्यकताओ का प्रबन्ध कर देते हैं। उनसे इनकी वृत्ति है और इनसे उनकी।

सहयोग और सहकारिता से काम सुन्दर भी होते हैं और सस्ते भी। उन पर शक्ति, समय और धन का व्यय कम होता है। एक घर को आग लग गई हो, तो यदि एक आदमी पानी निकालता जाय, दूसरा उसके ढोने का काम करे और तीसरा आग बुझाने का, तो को शीघ्र ही बुझाया जा सकता है। यदि एक ही व्यक्ति पानी निकाले, और स्वयं ही उठाकर ले जाय और स्वय ही आग बुझाए तो आग पर

फल नहीं पा सकता । फुटबाल आदि खेलों में भी जो टीम मिल कर - परस्पर सहयोग से—खेलती है, वह अवश्य दूसरी पर विजय प्राप्त करती है । यदि एक ही खिलाड़ी पीछे-आगे, दायें-बायें सर्वत्र गेंद को अपने ही पास रखे और अपने साथी के पास न भेजे, तो वह टीम कभी जीत नहीं सकती ।

इसी प्रकार सहकारिता से किये हुए काम सस्ते भी पड़ते हैं । जिस मनुष्य ने आटा पीसने का काम उठाया है, वह बढ़िया से बढ़िया पीसने का उपकरण रख कर हजारों मन आटा पीस देता है । यदि प्रत्येक मनुष्य अपना-अपना आटा स्वयं पीसने लगे तो वह उस जैसी दक्षता और उस जैसे साधन और बहुमूल्य उपकरण प्राप्त नहीं कर सकता । इनके अभाव में आटे की उत्तमता में भी अवश्य भेद रहेगा ।

इसी प्रकार जातियों, राष्ट्रों और साम्राज्यों के काम भी परस्पर सहकारिता से चलते हैं । कोई राष्ट्र लोहा और कोयला देता है, कोई मशीनरी और कोई बढ़िया वैज्ञानिक । कोई देश कपास देता है तो कोई उसका कपड़ा बना देता है । इसी प्रकार साहित्य, कला, विज्ञान और दूसरी सांस्कृतिक बातें अनेक राष्ट्रों और साम्राज्यों के सहयोग से सफल हो रही हैं ।

इस प्रकार सहकारिता के अतिरिक्त कभी-कभी व्यापार, और बड़े-बड़े औद्योगिक कार्यों के लिये मनुष्य ज्ञानपूर्वक मिल कर सहयोग करते हैं । सहकारी समितियाँ, कारखाने, तथा कम्पनियाँ आदि इसी प्रकार सहकारिता के उदाहरण हैं ।

समता

[illegible] के इस [illegible] और सर्वांगपूर्ण सिद्धान्त के [illegible] के बाद यह बात [illegible] में समझ में आ जाती कि [illegible] कार्य [illegible] शक्ति और योग्यता के अनुसार

समाज का उपकार कर रहा है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति की उपयोगिता उतनी ही आवश्यक है जितनी एक छोटे से छोटे पुरजे की किसी मशीन में हो सकती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति समाज के लिये समान रूप से उपयोगी है। इस आधार पर समाज मे उसके अधिकार भी समान हैं।

मनुष्यमात्र में समदृष्टि का भाव सभ्य समाज में नितान्त आवश्यक है। कई मनुष्य बहुत बलवान् हैं, कई बहुत दुर्बल। कुछ स्वस्थ हैं, कुछ बीमार, कुछ अमीर हैं कुछ गरीब। कुछ पूजीपति हैं और कुछ मजदूर। कुछ बुद्धिमान् है, कुछ मूर्ख। इस प्रकार अनेक भेद और नानारूप विभिन्नताओ के होते हुए भी समाज की दृष्टि में सब बराबर हैं। मनुष्यत्व के नाते सब एक दूसरे के भाई हैं। प्रकृति की दृष्टि में शीत, आतप, रोग,, व्याधि, जरा मृत्यु आदि सब के लिये एक से हैं। इसलिये सब को अपना भाई समझना, सब को अपनी तरह समझना, सब से समवेदना और समभूति का भाव रखना अत्यन्त आवश्यक है। "आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः"* का सिद्धान्त मनुष्य समाज का आधार है।

व्यक्ति

अब तक हम समाज के सम्बन्ध मे ही लिखते आए हैं। समाज की अपेक्षा व्यक्ति को हम ने बहुत ही अकिञ्चित्कर और नगण्य बताया है। पर व्यक्ति इतनी उपेक्षणीय वस्तु नहीं है। आओ, अब व्यक्ति के सम्बन्ध में भी थोड़ा विचार कर लें।

---

*बुद्धिमान् वही है जो प्राणीमात्र को अपने समान समझता है। (मन

आखिर समाज व्यक्तियों के मेल से ही बनता है और समाज का निर्माण 'व्यक्ति के लाभ" के लिये ही हुआ है। अतः व्यक्ति की अवहेलना करके समाज न स्थायी रह सकता है, न उन्नत हो [illegible] है। हम ने समाज को मानवीय शरीर या एक यंत्र के समान बताया है और भिन्न २ व्यक्ति उस समाज-शरीर के पृथक २ अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं या समाज रूपी मशीन के भिन्न २ पुरजे हैं।

यदि मशीन के पुरजे निकम्मे लोहे के बने हों, तो क्या वह मशीन स्थायी हो सकती है? शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की दुर्बलता या बलिष्ठता पर शरीर का दुर्बल या बलिष्ठ होना निर्भर है। कच्ची ईंटों की बनी दीवार भी कच्ची होती है। मोतियों की कीमत से ही माला की कीमत आंकी जाती है। निकम्मे व्यक्तियों से बना हुआ, समाज अवश्य निकम्मा होगा।

न केवल यह, अपितु मशीन में यदि कुछ पुरजे अच्छे बढ़िया लोहे के हों और कुछ निकम्मे लोहे के हों, तो भी निकम्मे पुरजों के शीघ्र घिस जाने के कारण वह सारी मशीन शीघ्र निकम्मी हो जायगी, कुछ पुरजों का बढ़िया होना व्यर्थ हो-जायगा। इसी प्रकार समाज [illegible] में यदि कुछ व्यक्ति अत्युत्तम हों, पर साथ ही [illegible] निकम्मे [illegible], तो वह समाज शीघ्र ही निकम्मा हो जायगा। [illegible] का आधार [illegible] व्यक्ति की श्रेष्ठता या गुणवत्ता [illegible]।

[illegible] कि व्यक्तित्व का विकास, संरक्षण और [illegible] [illegible] व्यक्ति के [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible]

जैसे वृक्ष अपने फलो से पहचाना जाता है, वैसे ही समाज की कसौटी उसके व्यक्तियो का आचरण और शील है।

इस बात को यो समझिये। डाकू और लुटेरे मनुष्यो के भी गिरोह होते हैं। उनमें समाज के आधार-नियम भी काम करते हैं। परस्परभावना, सहयोग, परस्पराश्रितता और अपने साथी के लिये अपना जीवन तक बलिदान कर देने का अदम्य उत्साह और साहस उन में भी पाया जाता है। पर डाकुओ के गिरोह को कोई भी समाज का नाम नहीं देता और न उसे अच्छा समझता है। कारण कि उस में व्यक्तियो का आचरण इतना निंदनीय और जघन्य है कि उन से बने हुए समूह को भी कोई अच्छा नहीं समझता। वे लोग समाज के आधार-नियमो का अवश्य पालन करते हैं, पर बडी संकीर्ण और संकुचित दृष्टि से। वे दूसरों की हानि करके अपना लाभ करते हैं। यह स्वार्थ है। पर-हितघातक निज-हित-साधन महापाप है।

इस से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि व्यक्ति की उन्नति और उत्तमता पर समाज की उन्नति और उत्तमता निर्भर है। सारांश यह कि जैसे व्यक्ति का जीवन और हित समाज पर निर्भर है, इसी प्रकार समाज का जीवन और हित भी व्यक्ति पर आश्रित है। एक अङ्ग की शिथिलता या बीमारी के कारण सारा शरीर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार एक भी व्यक्ति के खराब होने से सारा समाज खराब हो जाता है। 'एक मछली सारे पानी को गंदा कर देती है' की कहावत यहां पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है।

इस प्रकार व्यक्तित्व का विकास समाज का प्रधान कर्त्तव्य है। व्यक्तित्व के विकास के लिये व्यक्तियों का शिक्षण, उन में सदाचार भावना, आत्म-संयम, परहित-साधन का भाव, और कर्तव्य-परायणता

इत्यादि सद्गुणों का भरना समाज का काम है। जो समाज व्यक्ति
इन गुणों के विकास और अभिवृद्धि की सुविधाएं प्रदान नहीं करता
वह त्याज्य है।

प्रत्येक व्यक्ति में अपना २ पृथक् आत्मा है। उसकी बुद्धि
पृथक् है, और मन तथा मनोभाव भी पृथक् हैं। इस के साथ ही व्यक्ति-
यों की रुचियों में भी भेद विद्यमान है। उन का दृष्टि-कोण भी भिन्न
होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने इस 'निजत्व' को छोड़ नहीं सकता। वह
छोड़ना चाहता भी नहीं। वह इस 'निजत्व' को 'अनन्य' या 'अद्वितीय'
रहने देना चाहता है। जब कोई हमें कहता है—"मैं तुम्हें अच्छी तरह
जानता हूँ" तो हमें बहुत क्रोध आता है। मानों हम यह सहन नहीं कर
सकते कि कोई दूसरा हमारे "निजत्व" का परिज्ञान प्राप्त कर सके।
इस प्रकृति-प्रदत्त प्रबल एवं स्वाभाविक 'निजत्व' को ही व्यक्ति का
अपना 'व्यक्तित्व' कहते हैं। इस का संरक्षण करना समाज का
कर्त्तव्य है।

प्राचीन जातियों के इतिहास में हम पढ़ते हैं कि कई बार समाज
ने अपने 'समाजत्व' की रक्षा के लिये व्यक्तियों पर घोर अत्याचार
किये हैं, उन के व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को समाज के [illegible]
पर कुचलना किया है। व्यक्ति के रहन-सहन, खान-पान, वेष-भूषा [illegible]
आचार-विचार आदि पर इतना कड़ा नियंत्रण किया है कि व्यक्ति
व्यक्तित्व ही समाप्त कर दिया गया। दास प्रथा इस का साकार उदाहरण
है [illegible] [illegible] या [illegible] समझी जाने वाली जातियां
[illegible] [illegible] का मूर्तिमान स्वरूप हैं। ऐसे समाज के विरुद्ध
[illegible] [illegible] और व्यक्ति ने समाज के इस अत्याचार [illegible]
[illegible] [illegible] का पूरा प्रयत्न किया। मनुष्य स्वतंत्रताप्रिय है।

आचार-विचार की गुलामी पसंद नही करता। उसे रूढ़ियो की शृंखलाओ में जकड़े रहना नहीं भाता। इस कारण आज का सभ्य समाज प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का मान करना और उस के विकास और संवर्धन के लिये पूरी सुविधाएं और सुअवसर जुटाना अपना परम कर्तव्य समझता है।

व्यक्ति के अधिकार और कर्तव्य

व्यक्ति और समाज परस्पर एक दूसरे के आश्रित हैं, इस नियम को भली भांति समझ लेने पर यह स्पष्टतया प्रतीत हो जायगा कि समाज का उद्देश्य है व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विकास और व्यक्तिगत-शील का संरक्षण, और व्यक्ति का आदर्श है समाज की रक्षा और समुन्नति। समाज अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये—व्यक्तित्व के विकास के लिये—व्यक्तियो को जो सुविधाएं देता है. उनका नाम है "अधिकार" और व्यक्ति समाज के लाभ के लिये जो कुछ करता है, उसे कहते हैं 'कर्तव्य'।

दूसरे शब्दो में 'व्यक्ति' समाज से जो कुछ लेता है, वह उसका 'अधिकार है और वह जो कुछ समाज को देता है वह है उसका "कर्तव्य"। या यों कहिये कि समाज अपने लाभ के लिये व्यक्ति से जो मांगता है वह है व्यक्ति का कर्तव्य और व्यक्ति अपने लाभ के लिये समाज से जो कुछ मांगता है वह है उसका अधिकार। समाज की मांग समाज का अधिकार और व्यक्ति का कर्तव्य है, और व्यक्ति की मांग व्यक्ति का अधिकार और समाज का कर्तव्य है।

इस से स्पष्ट है कि 'अधिकार' और 'कर्तव्य' दोनों साथ २ चलते

है। यदि समाज व्यक्तियों से कर्तव्यपालन की आशा रखता है तो समाज को भी उन्हें कुछ अधिकार देने पड़ेंगे। इसी प्रकार यदि व्यक्ति समाज से कुछ अधिकार प्राप्त करता है—समाज से लाभ उठाता है—तो उसे भी कर्तव्यरूप में समाज के प्रति कुछ करना आवश्यक है। एक साहूकार को ऋण मांगने का अधिकार तभी है जब उसने कुछ दिया है। इस के बिना उसे ऋण मांगने का अधिकार नहीं मिलता। इसी प्रकार ऋणी को ऋण चुकाने का कर्तव्य तभी है जब उसने कुछ लिया है। न लेने पर उसे ऋण चुकाने का कर्तव्य लागू नहीं होता। समाज की दशा में भी यही बात है। व्यक्ति समाज के प्रति कुछ करता है तभी अधिकार प्राप्ति का उसे हक मिलता है। यदि वह करता कुछ नहीं, तो उसका अधिकार भी कुछ नहीं।

अधिकार

नीचे हम व्यक्ति के सामान्य अधिकारों का वर्णन करते हैं। ये अधिकार हैं जो व्यक्तित्व के विकास के लिये नितान्त आवश्यक हैं और मनुष्य मात्र का जन्म-सिद्ध अधिकार माने जाते हैं। ये मनुष्यता के नाते मनुष्य की मांग हैं। इनकी प्राप्ति में अमीरी, गरीबी, [illegible] और [illegible] या मूर्खता आदि की कोई भावना काम नहीं करती। ये मनुष्यता के मूल अधिकार हैं। नीचे संक्षेप में इनका कुछ विवरण दिया जाता है—

(१) **जीवित रहने का अधिकार**—प्रत्येक व्यक्ति का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह जीवित रहे। 'जीओ और जीने दो' [illegible] [illegible] है। मनुष्य भी [illegible] [illegible] है; [illegible] प्रकृति से मिला है [illegible] समाज के [illegible] पर [illegible]

अवस्था में किसी के जीवन का अपहरण नहीं कर सकता। इसके लिये दो बातें अपेक्षित हैं। एक तो जीवनोपयोगी परिस्थिति—शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध अन्न तथा प्रकाश, इत्यादि जीवन की आवश्यकताएँ—और दूसरे जीवनघातक उपद्रवों की शान्ति। रोग, हिंसक पशु, हिंस्र मनुष्य, दैवी प्रकोप आदि जीवन घातक चीजें हैं। अतः व्यक्तितत्व के विकास के लिये शुद्ध वायु आदि जीवन की सर्व-साधारण आवश्यकताओं की पर्याप्त मात्रा में प्राप्ति व्यक्ति की सर्व-प्रथम मांग है। और यह समाज का कर्तव्य है कि वह निरीह बालक से लेकर बूढ़े तक और गरीब मजदूर से लेकर पूंजीपति राजा तक सब के लिये इन पदार्थों के अधिकार को समान रूप से स्वीकार करे और इन का सुप्रबन्ध करे। दूसरे शब्दों में जो समाज किसी व्यक्ति या व्यक्तिसमूह को ऐसी परिस्थिति में रहने के लिये बाध्य करे जहां वायु, प्रकाश, और भोजन आदि की यथेष्ट प्राप्ति न हो, या जहां जीवनघातक खतरा मौजूद हो, तो वह समाज व्यक्ति पर अत्याचार करता है।

प्राचीन समय में यूनान देश में एक प्रथा थी जो व्यक्तियों के इस अधिकार को भली भांति प्रगट करती है। जो नानबाई या गूजर रोटी मे या दूध में कुछ मिलावट करता था या तौल में कम देता था, उसके गले मे एक रोटी बांध कर और उसका मुँह काला पोत कर तथा उसे एक ठेले में बिठा कर सारे नगर में घुमाया जाता था। प्रत्येक नागरिक उस का अपमान करता था। कारण कि उस नानबाई या गूजर ने 'व्यक्ति' के जीते रहने के अधिकार पर चोट लगाई है। अतः सारा समाज उसके विरुद्ध अपना क्रोध प्रगट करता था। भारतवर्ष में भी खाद्य पदार्थों में मिलावट करना महापाप समझा जाता

प्रत्येक सभ्य देश का समाज या राज्य इस अधिकार की रक्षा के लि विशेष कानून और दण्ड स्थिर करता है।

(२) **स्वास्थ्य**—डाक्टरों का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति जि प्रकृति इस संसार में भेजती है स्वस्थ होता है। अस्वस्थ बच्चे प्रकृति पैदा नहीं करती। संसार में आकर यदि बच्चा मरता है रोगी होता है तो यह समाज का दोष है। अतः स्वस्थ रहना मनु मात्र का जन्म-सिद्ध अधिकार है। व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा क समाज का कर्त्तव्य है। यदि कोई समाज किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह - मजदूरों आदि—के स्वास्थ्य का ध्यान न रख कर उन से का लेता है तो वह अत्याचार करता है। अतः व्यक्तियों के स्वास्थ्य-रक्षा के लिये सफाई तथा पेय जल आदि का सुचारु-प्रबन्ध करना और स्वास्थ्य-विघातक उपद्रवों को शान्त करना भी समाज का कर्त्तव्य है।

(३) **घर**—मनुष्य के जीवन और स्थिति के लिये घर का ह ना भी परम आवश्यक है। जिस व्यक्ति के पास सिर छिपाने के लिये, शीतातप और वर्षा आदि से त्राण करने के लिये, रोग और थकावट आदि में आराम करने के लिये घर भी नहीं, उस के व्यक्तित्व का प्र कार विकास हो सकता है? प्राचीन समय में जब दासता की प्रथा प्रचलित थी, तब समाज के एक बड़े भाग को यह सुविधा प्राप्त नहीं थी, पर सभ्यता के विकास के साथ इस बात को अनुभव कि जाने लगा है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना घर होना चाहिये।

इन सब जन्म-सिद्ध अधिकारों के गुटाने का अभिप्राय यह है कि समाज जब किसी व्यक्ति से काम लेता है—एक मजदूर की शारीरिक शक्ति का अपने लिये उपयोग करता है—तब समाज यह कर्त्तव्य है कि उस के लिये कुछ भोजन पान, पोशाक और घर

प्रबन्ध करे। दूसरे शब्दों में उसकी सेवा के बदले में उसे कम से कम इतनी मजदूरी जरूर मिलनी चाहिये जिससे जीवन की ये अत्यन्त अपेक्षित आवश्यकताएं पूरी हो सकें।

(४) स्वत्व का अधिकार—मनुष्य जो कुछ कमाता है—जो जायदाद वह पैदा करता है उस पर उसका अधिकार होना चाहिये। समाज-हित के साथ जहा विरोध न आता हो, वहां व्यक्ति का स्वत्व निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाय। यह स्वत्वाधिकार भी मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है*।

(५) शिक्षा—इनके साथ शिक्षा-प्राप्ति का अधिकार भी प्रत्येक व्यक्ति का नैसर्गिक अधिकार है। समाज की ओर से जन्म, जाति और दरिद्रता आदि के नाम से यदि शिक्षाप्राप्ति पर प्रतिबन्ध लगाए जाएं, तो वे व्यक्तित्व के विकास के लिये घातक हैं। जो समाज अपने बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करता वह क्या उन्नत समाज होगा? उसके बच्चे अनपढ़, मूर्ख और निकम्मे रहेंगे और उनके मूर्ख रहने से वह समाज भी अनपढ़ और मूर्खों का ही समाज गिना जायगा। इस लिये शारीरिक परिपुष्टि के साथ साथ बुद्धि और मनः शक्तियों का विकास भी नितान्त अपेक्षित है। आखिर संसार की दौड़ धूप में "बुद्धि" और विद्या का बहुत बड़ा हाथ है।

(६) स्वतन्त्रता—यह भी मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। सामाजिक बन्धनों की प्रचुरता में, व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के अभाव में व्यक्तित्व का विकास असंभव है। दूसरे, मनुष्य स्वभाव से ही स्वतंत्रता प्रिय है। परवशता या दूसरे की गुलामी उसे अखरती है। इसलिये समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने खान-पान, रहन-सहन, वेष-भूषा,

* आजकल के साम्यवादी इसे स्वीकार नहीं करते।

खान-पीन, वणिज-व्यापार, व्याह-शादी, धर्म-संस्कार आदि के पालन में स्वतंत्र होना चाहिये।

स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं कि मनुष्य जो कुछ चाहे करे। [illegible] के हाथ में यदि बन्दूक है तो जिस किसी को चाहे मार दे, या ऐसा काम करे जिस से सार्वजनिक स्वास्थ्य या सुख का व्याघात होता हो। स्वतंत्रता का ठीक अर्थ है—मर्यादा या सीमा के अन्दर अपने आचार-विचार में स्वतंत्र रहना। समाज को हानि पहुंचाने वाली अमर्यादित या निरंकुश स्वतंत्रता तो मनुष्य को पशु बना देगी। स्वतंत्र का अर्थ ही है—स्व + तंत्र अर्थात् अपने आप पर अपना नियंत्रण या काबू। जैसे जन-तंत्र या प्रजा-तंत्र का अर्थ है जनता का राज्य इसी प्रकार स्वतंत्र का अर्थ है अपने पर अपना—अपनी आत्मा का—राज्य। [illegible] मनुष्य किसी और के डर से या पैसे के लोभ से कोई काम करता है, तो वह परतंत्र कहा जाता है। जब बाहरी नियंत्रणों के बिना अपनी आत्मा की प्रेरणा से समाजहितैषी काम करता है तब वह स्वतंत्र कहलाता है। एक समाज-शास्त्रज्ञ के शब्दों में "समाज-हित [illegible] स्वतंत्रता मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास को परिपूर्ण करती है किन्तु [illegible] और नियम के बिना अनियंत्रित स्वतन्त्रता उसे पशु बना देती है।"

[illegible] राष्ट्र में भाषण-लेखन की स्वतंत्रता, आत्म-[illegible] [illegible] की स्वतंत्रता, मत-प्रकाशन की स्वतंत्रता, [illegible] की स्वतंत्रता, किसी सभा आदि में आने जाने [illegible] [illegible] के लिये सरकार से [illegible] [illegible] विचार करने की [illegible] [illegible] धर्म की स्वतंत्रता तथा व्यापार [illegible]।

आन्दोलन की स्वतंत्रता एवं किसी अदालत के फैसले के विरुद्ध अपील करने की स्वतन्त्रता, वोट देने की स्वतंत्रता आदि कई प्रकार की व्यक्तिगत स्वतंत्रताएं स्वतःसिद्ध अधिकार के रूप में अङ्गीकार की जाती हैं।

(७) **समता**—जब प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से समाज का अङ्ग है—जब उस का उपयोग और सहयोग समाज के लिये समान रूप से अपेक्षित है, तो समाज में उसका अधिकार भी समान होना चाहिये। समता का व्यवहार' उसकी स्वाभाविक मांग है।

सिद्धान्त की दृष्टि से "सार्वजनिक-समता" का भाव जितना उपादेय और स्तुत्यं है, व्यवहार में उस पर आचरण करना उतना ही कठिन प्रतीत होता है। आखिर सभी व्यक्ति समान कैसे हो सकते हैं? मनुष्य-समाज में उच्च नीच के तारतम्य का भाव इतनी पुष्कलता में विद्यमान है कि यदि उसे हटा दिया जाय, तो शायद मनुष्य-समाज का काम चलना भी बन्द हो जाय। अतः इस सार्वजनिक समता—या व्यक्ति मात्र के समान अधिकारों का यथार्थ अभिप्राय क्या है इस पर थोड़ा सा विचार करना होगा।

एक स्कूल की श्रेणी में बीस विद्यार्थी पढ़ते हैं। परीक्षा में एक के ८० नम्बर आते हैं और दूसरे के ३३। तो क्या समान अधिकारों का अर्थ यह है कि सब को एक जैसे नंबर दिये जाएँ? क्या एक को ८० और दूसरे को ३३ या इस से भी कम देना समता के सिद्धान्त के विरुद्ध है? नहीं, यह बात नहीं। यह अधिकारों की बात नहीं, यह योग्यता का माप है। परीक्षा एक तराजू है जिस ने प्रत्येक बालक की योग्यता को तोल कर बता दिया है। जैसे शरीर का भार सब का एक-सा नहीं होता, वैसे ही परीक्षा में सब के नंबर भी एक से नहीं हो सकते। नम्बरों का भिन्न-भिन्न होना लड़कों की योग्यता का

ौकरियां, और शासन में भाग लेने की सुविधाएं सब के लिये एक ी होनी चाहिये। जन्म, जाति और जायदाद आदि की विषमता के ारण किसी व्यक्ति को इन बातो का अनधिकारी न बताया जाय।

कानून की समता तो बहुत दिनो से सभ्य समाज मे आ चुकी है. र राजनैतिक-समता की प्रगति बहुत धीरे २ हुई है। और अभी भी उस में बहुत कुछ उन्नति होने को है। राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का सदस्य है; पर राष्ट्र के अधिकारी चुनने में प्रत्येक व्यक्ति को वोट का अधिकार नहीं दिया गया। 'वोट' के लिये अभी काफी प्रतिबन्ध विद्यमान हैं जो शनैः २ दूर हो रहे हैं।

इसके अतिरिक्त सामाजिक समता भी मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है। जाति-पाति और जन्म-सम्बन्धी विषमताओं को हटा कर 'समता' का स्थापन करना सामाजिक समता का अङ्ग है। प्राचीन काल में कई व्यक्ति विशेष २ कामों के इसलिये अनधिकारी माने जाते थे कि उनका जन्म एक विशेष जाति में हुआ है। आज का सभ्य समाज इन संकीर्ण भावो को अङ्गीकार नहीं करता। शक्ति और योग्यता के अभाव के कारण कोई अनधिकारी भले ही रहे, पर जाति और जन्म के कारण कोई व्यक्ति किसी उच्चाधिकार या कर्मविशेष का अनधिकारी नहीं।

फलतः सार्वजनिक-समता का सारांश यह है कि मनुष्य के साथ मनुष्यता के नाते से 'समता का व्यवहार' किया जाय। जन्म, सम्पत्ति और उच्चाधिकार के घमण्ड मे कोई किसी को नीच या जघन्य न समझे और जन्म आदि के कारण किसी पर कोई अशक्तता न थोपी जाय।

प्राचीन समय की दासप्रथा और भारतवर्ष की अस्पृश्यता मनुष्य

व्यक्तियों को भी है। फलतः मानवीय जीवन की पवित्र अघन्यता व्यक्ति का सर्व-प्रथम कर्तव्य है।

इसी प्रकार जब प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है कि वह स्वस्थ रहे, तो इस के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह स्वास्थ्य वर्द्धक उपायों का अवलम्बन करे और स्वास्थ्य-विघातक बातों को न करे। फलतः अपने घर, मोहल्ले, ग्राम और नगर की सफाई और खाद्य पदार्थों में मिलावट न करना, वायु और जल की शुद्धि आदि के सम्बन्ध में सब कर्तव्य इस के अन्तर्गत हो जाते हैं।

छोटी २ बातों में भी इस कर्तव्य की पूर्ति आवश्यक है। एक मनुष्य यदि कमरे में या बाजार में थूकता है, या गली में कूड़ा कचरा आदि फेंकता है, तो वह अवश्य दुर्गन्ध और कीटाणु फैला कर अपने साथियों के स्वस्थ्य को खराब करता है। इसी प्रकार यदि एक व्यक्ति किसी जल-स्रोत में थूकता है या किसी और प्रकार से पानी को गंदा करता है, तो वह समाज के प्रति महापराध कर रहा है।

इसी प्रकार जब प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता का अधिकार है, तो प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह सबको स्वतंत्रता का उपभोग करने दे—किसी की स्वतंत्रता का अपहरण न करे। बल, धन और अधिकार के घमण्ड में छोटे-से-छोटे व्यक्ति की स्वतंत्रता की भी अवहेलना न करे। इसी प्रकार समता का अधिकार सब के साथ समता का व्यवहार करने और किसी से घृणा न करने के कर्तव्य में परिणत हो जाता है।

इस से स्पष्ट है कि सामाजिक अधिकारों की पूर्ति ही एक प्रकार से सब का सर्व-प्रथम कर्तव्य है। इस सम्बन्ध में नानारूप कर्तव्यों की नामावली नहीं दी जा सकती। जिस प्रकार व्यक्ति को समाज से लाभ अनन्त हैं, इसी प्रकार व्यक्ति के समाज के प्रति कर्तव्य भी अनन्त हैं।

सम्पादन और संग्रह करे जिससे वह समाज का उपयोगी अङ्ग बन सके। जो मनुष्य संसार को छोड़ कर—विरक्त हो कर—साधु बन जाते हैं और अपने जीवन निर्वाह के लिये समाज पर आश्रित रहते हैं पर अपने उपदेश या सेवा आदि के द्वारा समाज का कुछ भी हित-साधन नहीं करते, वे समाज पर भार-स्वरूप हैं। आज के नागरिक को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह समाज का अधिक-से-अधिक उपयोगी अंग बने। समाज-सेवा से आत्म-सेवा करे—समाज-सेवा को ही भगवान् की सेवा समझे, और समाज के हित से ही अपना हित सम्पादन करे।

देश के प्रति—जिस देश मे मनुष्य रहता है, उसके प्रति भी उसके विशेष कर्तव्य हैं। देश अनन्त उपकारो को दृष्टि में रखते हुए, देश भक्ति एक अच्छे नागरिक का परम-कर्त्तव्य है। देश के हित के लिये अपने व्यक्ति-गत हित का परित्याग करना देश भक्ति है। जिस देश ने हमें जन्म दिया है, जहां के जल-वायु से हम जीवन प्राप्त करते हैं, उसकी रक्षा और समुन्नति करना सब का कर्त्तव्य है। देश में आत्मीय भावना की दृढ़ता इसका मूल है। हम अपनी माता से प्रेम करते हैं, इसलिये नही कि वह सब से विदुषी स्त्री है, या सब से अच्छी है, पर इस लिये कि वह 'हमारी' मां है। इसी प्रकार अपना देश—चाहे सब से अच्छा न हो, चाहे इस में कुरीतियां और अविद्या हो तो भी—हमारी भक्ति का भाजन है, क्योंकि वह हमारा है। उसकी कुरीतियों को दूर करना, विद्या का प्रचार, उसे बाहरी लुटेरों के आक्रमणों तथा भीतरी उपद्रवो से बचाना, तथा उसे सब प्रकार से समुन्नत करना और उसे राजनैतिक रूप में स्वतंत्र कराना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

अपने देश की भक्ति का यह अभिप्राय नहीं कि दूसरों से घृणा की

वृद्धि के लिये ही बनाये गये हैं। बड़े २ नगरों की सड़कों पर सिपाही खड़े रह कर आने जाने वाली गाड़ियों को अपने २ हाथ पर चलने का संकेत करते हैं। कहीं २ चौक पर वे हमारी गाड़ी को रोक भी देते हैं। तो क्या यह कानून हमारी स्वतंत्रता को रोकता है ? नहीं, ऐसा समझना भूल है। यह तो हमारी रक्षा के लिये है। यदि यह न हो तो कई गाड़ियां टकरा जाए और कई व्यक्तियों के जीवन का अन्त हो जाय। इसी प्रकार कड़े से कड़ा दीखने वाला कानून भी लोक-हित की दृष्टि से परम उपयोगी होता है। अतः कानून का पालन करना प्रत्येक नागरिक का मुख्य कर्तव्य है।

टैक्स देना—राज्य-कर या टैक्स का यथावत् प्रदान करना हमारा कर्तव्य है। हम राज्य की बनाई हुई सड़कों का प्रयोग करते हैं, उसकी पोलीस तथा सेना से लाभ उठाते हैं, और उसके न्यायालयों का प्रयोग करते हैं। तो इन सब के सञ्चालन के लिये राज्य को धन की आवश्यकता होती है। इसे राज्य कर या टैक्स के द्वारा प्राप्त करता है। प्रायः लोग टैक्स देने मे आनाकानी करते हैं। यह कर्तव्य-च्युति है। राज्य-कर हमारे ही लाभ के लिये प्रयुक्त होते हैं। वे हमारी ही सुख-शान्ति के घटक हैं। इनको यथावत् देना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।

वोट और उसका प्रयोग

वोट क्या है—मान लीजिये लाहौर के किसी स्कूल या पाठशाला में किसी छुट्टी के दिन मनोरञ्जन के लिये कहीं बाहर भ्रमणार्थ जाने का निश्चय हुआ है। अध्यापक लड़कों से पूछता है कि किस स्थान पर जाया जाय ? अब कोई विद्यार्थी कहेगा, हमें शाहदरा ..

[illegible]गे। कोई शाकाहार नाग के पक्ष में होगा और शायद कोई नरम [illegible] दल का पक्ष [illegible] या शासन-तंत्र पर जाने को कहेगा। सब की रुचि भिन्न २ है और सब का दृष्टि-कोण भी अलग अलग है। अपने [illegible] की पुष्टि में सभी युक्तियाँ देंगे। शेष विद्यार्थी इन सब स्थानों के [illegible] विचार करके अपनी २ रुचि के अनुसार अपनी सम्मति देंगे। [illegible] निर्णय पर पहुँच जायेंगे और शायद कभी २ [illegible] मतभेद हो जाय। कुछ भी हो इस प्रकार सम्मति प्रगट करने [illegible] वोट देना कहते हैं। इस का अर्थ यह हुआ कि किसी [illegible] में [illegible] अपना मत प्रकाशित करना या राय देना वोट कहाता है। दूसरे शब्दों में "मत प्रकाशन की स्वतंत्रता के अधिकार" को वोट कहते हैं।

हमें उन बच्चों की तरह उसी मिठाई से सन्तुष्ट होना पड़ता है, जो पिता ने अपनी इच्छा से—अपनी पसंद के अनुसार—उन्हे ले दी थी। यही वोट के अधिकार की विशेषता है।

राज्य प्रबन्ध में प्रत्येक व्यक्ति को मत देने के अधिकार का अर्थ यह नहीं कि राज्य की प्रत्येक छोटी २ बात के सम्बन्ध में सबसे अलग २ सम्मति प्राप्त की जा सके। ऐसा करना सम्भवतः असम्भव होगा। इसलिये हम अपनी सम्मति से कुछ एक योग्य व्यक्तियों को चुन लेते हैं जिनके सम्बन्ध में, हम समझते हैं कि ये हमारी सम्मति को प्रगट करने तथा हमारे हितो की रक्षा करने में समर्थ हैं। ऐसे व्यक्तियो को हम अपना 'प्रतिनिधि' कहते हैं—अर्थात् शासन-सम्बन्धी बातो में वे व्यक्ति हमारी ओर से सम्मति देंगे। इस प्रकार वोट देने का सीधा अर्थ यह हो जाता है कि राज्य का प्रबन्ध करने के लिये अपने प्रतिनिधियो के चुनने का अधिकार। अपने प्रतिनिधियो के द्वारा मानों हम ही शासन कर रहे हैं। इस को कहते हैं—जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा राज्य-प्रबन्ध का संचालन या 'प्रतिनिधि-राज-तंत्र'।

वोट का अधिकार व्यक्ति के पास समाज की एक पवित्र अमानत है, जो बहुत प्रयत्न, आन्दोलन और कष्ट सहन करने के पश्चात् जनता को प्राप्त हुई है। इसे सदा समाज-हित के लिये ही प्रयुक्त करना चाहिये। हमारे देश के असंख्य महामना नेताओं ने घोर कष्ट, यातनाएँ और दुःख भोग कर, इस अधिकार को हमारे लिये प्राप्त किया है। उनके आत्म-त्याग और बलिदान का फलस्वरूप यह अधिकार यदि अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिये बरता जाय, तो इस से बढ़ कर और कोई कृतघ्नता न होगी। देश के नेता इस संघर्ष में जेल जाते हैं, देश से निर्वासित किये जाते हैं और कभी २ फांसी

है। सदाचार ही मनुष्य की कसौटी है और मनुष्यो के सदाचार की मात्रा पर ही समाज की भद्रता या अभद्रता निर्भर है।

स्वार्थ की अपेक्षा परार्थ का अधिक चिन्तन करना सदाचार का प्रथम लक्षण है। स्वार्थ सदाचार का सब से बड़ा शत्रु है और परार्थ-संपादन सदाचार का सब से बड़ा मित्र। उत्कोच या रिशवत लेना, देश-द्रोह, विश्वासघात, अन्याय और पक्षपात आदि भयङ्कर दुर्गुण सब स्वार्थ के ही नाना रूप हैं। सदाचारी मनुष्य अपने व्यवहार मे अपने सुख, लाभ और आनन्द की अपेक्षा दूसरे के सुख, लाभ और आनन्द का अधिक ध्यान रखता है।

कर्तव्य-परायणता, या अपने कर्तव्य को अच्छी तरह और ईमानदारी से पूरा करना सदाचार का द्वितीय लक्षण है। कई मनुष्य अपने कर्तव्य से विमुख रहना पसद करते हैं। वे सदाचारी कभी नहीं कहे जा सकते। वे समाज के परम शत्रु हैं। एक वार किसी ग्राम के हस्पताल में एक हैजे का रोगी पड़ा था। उसके हाथ पांव ठण्डे हो गये थे। डाक्टर ने हस्पताल के परिचारक से कहा कि यह रोगी बहुत संकट में है। इसके जीवन की रक्षा का केवल एक ही उपाय है कि गरम पानी में तौलिया भिगो कर इसके हाथो और पांवो को लगातार दो घण्टे तक मसल कर गरम रख जाय। यह कह कर डाक्टर चला गया और परिचारक ने एक आध वार बड़ी लापरवाही से उसके पांवों पर गरम तौलिया रखा और फिर बीड़ी पीने अलग बैठ गया। परिणाम यह हुआ कि रोगी की रक्षा न हो सकी। अब यदि परिचारक एक सभ्य नागरिक होता या उसने सदाचार की शिक्षा पाई होती, तो वह अपने कर्तव्य को पहचानता और रोगी की उचित शुश्रूषा करके उस के प्राणों को बचा लेता। पर वह अपने ही सुख का विचार करके—

हंसते २ यथावत् पूर्ण करना और परहित के लिये आत्मत्याग और आत्मबलिदान आदि गुण आत्मनिग्रह से ही प्राप्त होते हैं। असंयत और ढीली आदतों वाला आलसी मनुष्य संसार में कुछ नहीं कर पाता।

शील इन सब गुणो के समुदाय का ही नाम है। एक शीलवान् व्यक्ति सभ्य, सस्कृत, और सुपरिष्कृत स्वभाव वाला होता है। वह उदार चरित, प्रसन्नवदन, मत्य और मितभाषी, विनीत और मृदु होता है। वह मन, वचन और कर्म में शुद्ध और कृतज्ञ होता है। कार्डिनल न्यूमैन महाशय ने एक शीलवान् व्यक्ति के लक्षण यो लिखे हैं—

"शीलवान् व्यक्ति का लक्षण ही यह है कि वह अपने मन, वचन, कर्म से कभी किसी को पीडा नहीं देता। वह आलसी नहीं होता। वह अपने किसी भी कर्म से अपने साथियो की दृष्टि में अखरना नहीं चाहता। अपनी शुद्धता पर स्वयं कड़ी दृष्टि रखता है। मत-भेद पर शत्रुता करना उसे नहीं आता। भावो के सघर्ष से वह बचता है। अपने व्यवहार से दूसरो को प्रसन्न रखता है। वह दुर्बलों से मृदुता, साथियों से भद्रता और दुष्टो से दयालुता का व्यवहार करता है। वह दूसरों का यथा-शक्य उपकार करने से अपने आप को उपकृत मानता है। वह उपकार के प्रत्युपकार की इच्छा नहीं रखता। आत्मश्लाघा उसके स्वभाव में नहीं होती। किसी की बुराई या निन्दा के सुनने की सहन-शक्ति उसमें नहीं होती। वह कभी क्षुद्र नहीं होता। उसका मन सदा विशाल और उदार होता है। छोटी २ बात पर उसे क्रोध नहीं आता। उसका स्वभाव गम्भीर होता है। किसी के द्वारा पहुँचाई हुई हानि को वह याद नहीं रखता। स्वयं किसी का अपमान नहीं करता। वह धैर्यशाली और सहिष्णु होता है। वह दुःख में घबराता नहीं। उसकी शिक्षित और परिमार्जित बुद्धि वाद-विवाद में कभी उसे अशिष्ट

सुख नहीं दे सकता। धन से भोजन के लिये स्वादु-से-स्वादु और वढ़िया-से-वढ़िया वहुमूल्य खाद्य पदार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं, पर पाचन-शक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। सोने के साधन—तकिया, गदेला और वढ़िया विस्तरा धन से मिल सकता है, पर नींद धन से नहीं खरीदी जा सकती। अतः उत्तम स्वास्थ्य प्रकृति की देन है। यह ईश्वरीय विभूति है और सुख-आनन्द का वास्तविक कारण है। नीचे हम संकेत रूप से स्वास्थ्य क कुछ मोटे २ नियमो का उल्लेख करते हैं।

१. **वायु**—शुद्ध वायु का सेवन स्वास्थ्य का प्रथम नियम है। पढ़ना, लिखना आदि अपने सभी काम शुद्ध और खुली वायु में करने चाहियें। दूषित वायु स्वास्थ्य को खराव करती है। जो मनुष्य वन्द कमरों में पढ़ते हैं, या खिड़कियां वन्द करके सोते हैं, उनका स्वास्थ्य ठीक नही रह सकता। दूषित वायु में सांस लेने से उनके फेफड़े खराव हो जाते हैं और वे तपेदिक जैसी भयङ्कर व्याधि में ग्रस्त होने की सम्भावना से वच नहीं सकते।

२. **व्यायाम**—शरीर को स्वस्थ रखने के लिये साधारण व्यायाम आवश्यक है। प्रकृति ने मनुष्य का शरीर चलने-फिरने वाला वनाया है। जो एक ही स्थान पर वैठे २ काम किया करते हैं और खेल, कूद, भ्रमण, या डण्ड वैठक आदि के द्वारा व्यायाम नहीं करते, वे स्वस्थ नहीं रह सकते। व्यायाम से अङ्गो में स्फूर्ति, और शरीर में चुस्ती आती है। रुधिर शुद्ध होता है और फेफड़े वलवान् होते हैं। व्यायाम सदा खुली वायु में करना चाहिये।

३. **भोजन**—शुद्ध, सादा तथा पौष्टिक भोजन स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। प्रायः भोजन न करने से और अधिक भोजन करने से ही रोग उत्पन्न होते हैं। खाद्य पदार्थों में 'दूध' सव से उत्तम और

९. सदा अपने आप को किसी काम मे व्याप्त रखो। यह स्वास्थ्य-का एक रहस्य है। खाली रहना—कुछ न करना—पाप करना है। बीच २ मे थोड़ी देर के लिये आराम करना तो आवश्यक है, पर मन को खाली रखने से मनुष्य निकम्मी बातें ही सोचता है।

१०. सदा प्रसन्न रहना भी स्वास्थ्य के लिये परम उपयोगी है। प्रसन्न रहने से रुधिर बढ़ता है और मस्तिष्क हल्का रहता है। मन मे विक्षेप और क्षोभ उत्पन्न नहीं होते।

इस प्रकार इन साधारण नियमो पर आचरण करने से स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। इस बात पर सदा ध्यान रखना चाहिये कि बीमार होकर डाक्टरो को फीसें देकर कड़वी दवाइया पीने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि नियम पूर्वक शुद्ध वायु के सेवन और व्यायाम आदि के द्वारा रोग को उत्पन्न ही न होने दिया जाय। रोग मनुष्य की स्वाभाविक अवस्था नहीं। स्वास्थ्य मनुष्य की स्वाभाविक अवस्था है। स्वास्थ्य तो मनुष्य की प्रकृति से ही मिला हुआ है। ऊपर इस बात का संकेत किया जा चुका है कि प्रकृति सदा नीरोग बच्चे को संसार में भेजती है प्रकृति ने यह कभी नहीं चाहा कि मेरी बनाई हुई मशीन (शरीर) की मरम्मत मनुष्य करे। अतः स्वास्थ्य तो स्वतः प्राप्त और स्वतः सिद्ध स्वाभाविक वस्तु है। उसका स्थिर रखना और नाश न होने देना ही मनुष्य का कर्तव्य है।

यह भी याद रखना चाहिये कि स्वास्थ्य-हीन जीवन एक भार मात्र है। अस्वस्थ व्यक्ति दूसरो का तो क्या भला करेगा, अपने जीने के लिये भी वह सदा दूसरों का मुहताज रहता है। उस जितना दुखी और कोई नहीं। धन के बिना मनुष्य रह सकता है—बड़े २ काम भी कर सकता है, पर स्वास्थ्य के बिना मनुष्य किसी काम का नहीं। आखिर

सोचने की आदत मानसिक विकास की प्रथम सीढ़ी है। किसी वस्तु को देख कर, किसी समस्या को सुन कर उस पर गहरा विचार करने से मन की शक्तियो का विकास होता है। एक देहाती टेलीफोन को देख कर सोचता है, यह क्या है? कैसे इतने दूर से बातें हो रही हैं? पर इन्हीं पर क्षणिक आश्चर्य प्रगट न करके यदि वह गहरे विचार से इन 'क्यो' और 'कैसे' के उत्तर पाने का प्रयत्न करता है, तो निःसदेह वह अपने मन और मस्तिष्क को बढ़ा लेता है। कई वैज्ञानिको की जीवनी में हम यह पढ़ते हैं कि वे बिना किसी स्कूल या कालेज की शिक्षा के, इसी प्रकार के 'क्यो और कैसे' के प्रश्नो द्वारा अपने मस्तिष्क का विकास करके बड़े २ आविष्कार कर्ता हुए हैं*।

सत्य और असत्य का विवेचन—बलवान् और स्वस्थ मन का लक्षण यह है कि उसमें सदा सद्विवेक की शक्ति उत्पन्न हो जाय और वह भले-बुरे में भेद समझ सके। सत्य और असत्य दोनों को अपने २ ठीक रूप में जान सके। इसके बिना ठीक निर्णय तक पहुँचना मनुष्य के लिये असम्भव है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि हर बात के दो रूप होते हैं जिन्हें हम कहते हैं "चित्र के दोनों पहलू"। मनुष्य में इतनी प्रबल मनन शक्ति होनी चाहिये कि वह सदा हर बात के दोनो पहलुओं पर विचार करके ठीक निर्णय तक पहुँच सके। इसके अभाव में मनुष्य 'सहज-विश्वासिया' बन जाता है और संसार में बहुत बार धोखा खा जाता है। किसी को धोखा देना अगर धूर्तता है तो किसी से धोखा खाना निःसन्देह मूर्खता है। इस प्रकार का 'सहज-विश्वासिया' मनुष्य शीघ्रता

---

* इनकी जीवनियों के लिये लेखक द्वारा हिन्दी में अनूदित "विज्ञान के आविष्कारक" नाम पुस्तक देखें।

बीसियों नमूने देखने पर वह अपनी कमीज़ के लिये कौन सा कपड़ा खरीदे इस का भी निर्णय शीघ्र नहीं कर पाएगा। निर्णय के अभाव में मनुष्य की इच्छा-शक्ति का भी विकास नहीं होता। और जिसकी इच्छा-शक्ति दुर्बल है वह संसार के किसी काम में सफल नहीं हो सकता।

शिक्षा—ऊपर हमने मन की शक्तियों की आवश्यकता का वर्णन किया है। अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि पढ़ने-लिखने और सोच-विचार की आदत किस प्रकार पड़ती है और मनः-शक्तियों का विकास कैसे होता है ?

यह काम शिक्षा का है। शिक्षा का अर्थ ही मनः शक्तियों का शिक्षण या विकासन है। अध्यापक, माता-पिता और मित्र मण्डल सब हमारी शिक्षा में भाग लेते हैं। शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक स्वतंत्र पुस्तकें विद्यमान हैं। पर नागरिक शिक्षा की कोई पुस्तक इस विषय को अछूता नहीं छोड़ सकती। अतः शिक्षा के सिद्धान्तों का यहां संक्षेप से दिग्दर्शन कराया जाता है।

वास्तविक शिक्षा का यह अर्थ नहीं कि हम पुस्तकों को घोट लें, या दो-चार भाषाओं को सीख लें। भाषाओं का ज्ञान और शिक्षा दो भिन्न २ वस्तुएँ हैं। पुस्तकों में पढ़े हुए ज्ञान को जब तक मनन करके हम आत्मसात् नहीं कर लेते, तब तक हमारी शिक्षा अधूरी है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध लेखक रस्किन ने एक स्थान पर लिखा है—'ब्रिटिश म्यूज़िअम"* की सारी पुस्तकें आद्योपान्त पढ़ जाने के बाद भी मनुष्य

---

* ब्रिटिश म्यूज़िअम संसार का सब से बड़ा पुस्तकालय है, जिसमें संसार की प्रत्येक पुस्तक का संग्रह है। भारत में नित्य जितनी पुस्तकें छपती हैं, उनकी एक प्रति उक्त पुस्तकालय में भेजने के लिये सरकार को देने का नियम है।

बीसियों नमूने देखने पर वह अपनी कमीज़ के लिये कौन सा कपड़ा खरीदे इस का भी निर्णय शीघ्र नहीं कर पाएगा। निर्णय के अभाव में मनुष्य की इच्छा-शक्ति का भी विकास नहीं होता। और जिसकी इच्छा-शक्ति दुर्बल है वह संसार के किसी काम में सफल नहीं हो सकता।

शिक्षा—ऊपर हमने मन की शक्तियों की आवश्यकता का वर्णन किया है। अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि पढ़ने-लिखने और सोच-विचार की आदत किस प्रकार पड़ती है और मनः-शक्तियों का विकास कैसे होता है?

यह काम शिक्षा का है। शिक्षा का अर्थ ही मनः शक्तियों का शिक्षण या विकासन है। अध्यापक, माता-पिता और मित्र मण्डल सब हमारी शिक्षा मे भाग लेते हैं। शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक स्वतंत्र पुस्तकें विद्यमान हैं। पर नागरिक शिक्षा की कोई पुस्तक इस विषय को अछूता नहीं छोड़ सकती। अतः शिक्षा के सिद्धान्तों का यहां संक्षेप से दिग्दर्शन कराया जाता है।

वास्तविक शिक्षा का यह अर्थ नहीं कि हम पुस्तकों को घोट लें, या दो-चार भाषाओं को सीख लें। भाषाओं का ज्ञान और शिक्षा दो भिन्न २ वस्तुएँ हैं। पुस्तकों में पढ़े हुए ज्ञान को जब तक मनन करके हम आत्मसात् नहीं कर लेते, तब तक हमारी शिक्षा अधूरी है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध लेखक रस्किन ने एक स्थान पर लिखा है—'ब्रिटिश म्यूज़िअम"* की सारी पुस्तकें आद्योपान्त पढ़ जाने के बाद भी मनुष्य

---

* ब्रिटिश म्यूज़िअम संसार का सब से बड़ा पुस्तकालय है, जिसमें संसार की प्रत्येक पुस्तक का संग्रह है। भारत में नित्य जितनी पुस्तकें छपती हैं, उनकी एक प्रति उक्त पुस्तकालय में भेजने के लिये सरकार को देने का नियम है।

अब यदि अध्यापक निर्णीतार्थ के रूप मे उन्हें बता देता है कि "प्रारब्ध" बलवान् है या "पुरुषार्थ" बलवान् है, तो दोनो ही अवस्थाओं मे बालक अध्यापक की बात पर विश्वास कर लेगें। परिणाम यह होगा कि बालको मे सोचने की शक्ति की वृद्धि नही होगी। हां, मस्तिष्क मे विश्वास के रूप में एक और एकपक्षीय—अतएव हानिकारक—ज्ञान की वृद्धि हो जायगी।

आज कल के शिक्षा-शास्त्री इस प्रकार पर अधिक विश्वास नहीं रखते। वे बालक के मस्तिष्क को अपने विचारो से भरना नहीं चाहते। वे बालक में स्वयं सोचने की शक्ति उत्पन्न करना चाहते हैं। वे किसी समस्या का निर्णय नहीं देना चाहते। वे समस्या के गुण-दोषो का विश्लेषण कर देते हैं और उन पर गहरा विचार करके निर्णय तक पहुँचने का काम विद्यार्थी पर छोड़ देते हैं। वे बालक को स्वयं चलने देते हैं और आप केवल मार्गदर्शक या सहायक के रूप मे साथ रहते हैं।

वस्तुतः शिक्षा का यह दूसरा प्रकार ही ठीक है। कारण कि अध्यापक सदा बालक के साथ नहीं रहता। बच्चे को गोदी में उठाकर स्नान कराने वाला पिता न तो सब स्थानों पर जा सकता है और न सदा बालक के साथ रह सकता है। अतः उचित यही है कि पिता उसमें चलने की शक्ति पैदा कर दे और उसे स्वयं चलने दे। जो अध्यापक पुस्तकों पर अधिक जोर देते हैं और अपने विचार बालक के मन मे ठूँसने का यत्न करते हैं, वे वस्तुतः बालक को मानसिक रूप में अपाहज बनाते हैं। अतः अध्यापक का काम केवल पथ-प्रदर्शन तथा मनः शक्तियो को व्यायाम देना मात्र है। दीपक दिखाना उसका काम है, वस्तुओ को देखना स्वयं बालक का काम है। क्या कभी वह मनुष्य पानी में तैर सकता है जिसने स्वयं स्वसंवेदन के प्रकार से तैरना

राज्य-तंत्र

मनुष्य और राज्य

राज्य के विना मनुष्य का जीवन सुखी, शान्त और सुरक्षित नही रह सकता। अराजकता में मनुष्य का व्यक्तित्व विकसित नहीं होता। नियम और व्यवस्था के लिये राज्य का होना नितान्त आवश्यक है। अपने जीवन मे मनुष्य पग पग पर राज्य के साथ संपर्क में आता है। वह राज्य की वनाई हुई सड़कों का प्रयोग करता है। राज्य से संचालित विद्यालयो में पढ़ता है। राज्य के हस्पतालों से दवाई लेता है। लेन-देन के व्यवहार मे वह राज्य की अदालतो में जाता है। गांव में उसे पटवारियो से काम पडता है। शहरो में सहस्रो वार उसे पोलीस तथा अन्य अधिकारियो के संपर्क में आना पड़ता है। वह नित्य ज्ञात या अज्ञात रूप मे राज्य के नियमों का यथावत् पालन करता है और राज्य के कानून उसकी—निरीह, नव-जात या गर्भस्थ वालक तक की भी—नित्य रक्षा करते हैं। इस से स्पष्ट है कि मनुष्य का राज्य से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस लिये राज्य और उस के शासन-विधान के सम्बन्ध में साधारण जानकारी रखना प्रत्येक सभ्य नागरिक के लिये आवश्यक और वांछनीय है।

राज्य का लक्षण

इंगलैण्ड के प्रख्यात राजनीतिज्ञ लार्ड बर्क (Burke) के शब्दों में 'राज्य मानवीय आवश्यकताओं की सुखपूर्ति के निमित्त मानवीय

नियम बनाना तथा जनता से उनका पालन करवाना और नियम भङ्ग करने वालो को दण्ड देना राज्य का काम है।

द्वितीय आवश्यकता का अर्थ है—राष्ट्र को भीतर के चोर और डाकुओ आदि के उपद्रवो से बचाना, तथा बाहर के आक्रमणो से सुरक्षित करना और वणिज-व्यापार तथा औद्योगिक धन्धो के द्वारा राष्ट्र की सम्पत्ति और ऐश्वर्य को बढ़ाना। अर्थात् राष्ट्र की रक्षा एवं सुव्यवस्था के लिये पोलीस और सेना आदि का रखना और वणिज-व्यापार को समुन्नत करने के प्रकार निकालना आदि काम राज्य के अधीन हैं।

तृतीय आवश्यकता का अभिप्राय यह है कि राष्ट्र में विद्या, कला, आदि के विकास और उन्नति के द्वारा मानवीय संस्कृति का प्रचार किया जाय। अर्थात् राष्ट्र मे विद्या-प्रचार आदि के लिये स्कूल, कालिज, युनिवर्सिटियां तथा अन्य वैज्ञानिक-संस्थाओ का चलाना और ज्ञान-विज्ञान के अनुसन्धान तथा उन्नति के लिये सुविधाएं जुटाना भी राज्य के कर्तव्यो में से है।

राज्य के इन कर्तव्यों को उपयोगिता के अनुरोध से दो भागो में बांटा जाता है—

१. मूल कर्तव्य या नित्य कर्तव्य।
२. स्वाभाविक कर्तव्य या गौण कर्तव्य।

मूल कर्तव्यों से अभिप्राय उन कर्तव्यो से है जिनका करना राज्य के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक है, और जिनके न करने से राज्य राज्य नहीं कहा जा सकता। इनका पूरा करना राज्य का सर्व-प्रथम और मौलिक काम है। प्रत्येक व्यक्ति के प्राणों तथा जायदाद की रक्षा नियम, न्याय, सुव्यवस्था और शान्ति का सचालन, देश की भ

और व्यक्तिगत कार्यों मे व्यक्ति को स्वतंत्रता रहनी चाहिये। इसी लिये हमने इनको गौण कर्तव्यो मे रखा है। राज्य का हस्तक्षेप उतना ही सह्य है जिससे व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य तथा उत्साह का नाश न हो।

राज्य की प्रणालियां

राज्य-शास्त्र के प्राचीन ज्ञाताओ ने राज्य की तीन प्रणालियों का उल्लेख किया है। 'एक-राज-तंत्र (मौनर्की या आटोक्रेसी), शिष्टजन-तत्र' (अरिस्टोक्रेसी) और 'प्रजा-तंत्र' या जन-तंत्र (डैमोक्रेसी)।

'एक-राज-तंत्र' प्रणाली में सारी शासन-सत्ता एक मनुष्य के हाथ में होती है। उसे राजा या अधीश्वर कहते हैं। इसके दो भेद हैं। अनियमित या अमर्यादित एकाधिपत्य-(एब्सोल्यूट मौनर्की) और नियमित। परिच्छिन्न राज-तंत्र, (लिमिटिड् मौनर्की)। अनियमित राज-तंत्र 'राजा की इच्छा' या 'राजा का वाक्य' कानून है। वही कानून का र्माता, वही उस का प्रयोक्ता और वही दण्ड-विधाता है। वह प्रजा के त का एकमात्र प्रभु है। निग्रहानुग्रह का वह स्वयं कर्ता है। ज्य उस की 'बपौती' या जद्दी जायदाद समझा जाता है और लोगो यह विश्वास रहता है कि ये अधिकार इसे परमात्मा की ओर से मिले हुए हैं और यह ब्रह्म की ओर से ही हमारा राजा बना कर जा गया है। संक्षेप में राजा के हाथ मे असीम और अनियन्त्रित ासन-सत्ता रहती है। प्राचीन संसार में इसी राज-तंत्र का प्रचार हा है और राज्य-सत्ता का उद्गम और विकास इसी एकाधिपत्य से ारम्भ हुआ है। राम, अशोक, अकबर आदि सभी एकाधिपति ाजा थे। उन्होंने अपने सच्चरित्र और सुशासन के द्वारा प्रजा के

होकर राज्य करे तो उसे 'शिष्टजनतंत्र' न कह कर दुष्टजनतंत्र' या 'दलबंदी' कहते हैं।

४ जनतंत्र में जनता राज्य करती है। यह "जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिये राज्य" कहा जाता है। इस में जन-साधारण के हित का पूरा विचार किया जाता है। सब कानून जनता के हित की दृष्टि से बनाये जाते हैं और उनके बनाने में जनता का अपना हाथ होता है। वर्तमान युग में इसी रीति को सर्व-प्रधानता प्राप्त है। इसके दो भेद किये जाते हैं। एक साक्षात् प्रजा का शासन (डाइरेक्ट डैमोक्रेसी) दूसरे प्रतिनिधि-तंत्र या जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा शासन (रिप्रिजेण्टेटिव डैमोक्रेसी)।

प्रथम प्रकार में सारी जनता इकट्ठी होकर शासन का काम करती है। यह बात छोटे २ राष्ट्रों में ही चल सकती है, जहां राष्ट्र की परिधि और संख्या बहुत ही थोड़ी हो। आजकल इस के दर्शन स्विट्ज़रलैण्ड की छोटी २ रियासतों में तथा उत्तरी अमरीका के न्यूइंगलैण्ड नामक प्रदेश में ही मिलते हैं। प्रतिनिधि-तंत्र में जनता अपने प्रतिनिधि चुन देती है और वे प्रतिनिधि ही जनता की ओर से शासन-प्रबन्ध करते हैं और अपने व्यवहार के लिये जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। जनता को थोड़े २ समय के बाद नये प्रतिनिधि चुनने का अवसर दिया जाता है, जिससे सत्ता का वास्तविक अधिकार सदा जनता के हाथ में ही रहता है। इंग्लैंड ने अपनी शासन-प्रणाली में इन तीनों बातों का सम्यक् समावेश किया हुआ है। वहां का राजा 'एकाधिपत्य' का चिह्न है, हाउस आफ लार्ड्स शिष्टजन तन्त्र का अवशेष है और 'हाउस आफ कामन्स्' जनतंत्र का साकार स्वरूप है।

इस जनतंत्र का कुत्सित रूप वह है जिसमें प्रतिनिधि अपने और

कानून वना सकते हैं और पुराने स्थगित कर सकते हैं। इंग्लैंड में यही परिवर्तनशील प्रणाली दृष्टिगोचर होती है। वहां प्रणाली के संबन्ध में यदि कोई नया बिल पार्लियामेंट में पास हो जाता है तो वह कानून वन जाता है और उसके आधार पर प्रणाली मे परिवर्तन हो जाता है।

एक और आधार पर हम वर्तमान राज्य-प्रणालियो के दो विभाग कर सकते हैं—प्रधानात्मक (प्रेजिडेंशल) और मंत्रिमण्डलात्मक (कैबिनेट् या पार्लियामेंटरी) प्रणाली।

प्रधानात्मक प्रणाली में शासन की बागडोर एक प्रधान व्यक्ति के हाथ मे सौंप दी जाती है। प्रधान का चुनाव नियत समय के लिये होता है। प्रधान की शासन-नीति पर व्यवस्थापिका सभा का कोई वश नहीं है और न प्रधान उसके समक्ष उत्तरदायी है। न ही उस के अविश्वास के कारण प्रधान त्याग-पत्र देने पर बाध्य है। व्यवस्थापिका सभा और प्रधान दोनों सर्वथा स्वतंत्र हैं। प्रधान की सहायता के लिये एक मंत्रि-मण्डल होता है पर उसकी स्थिति केवल 'एक सलाहकार' या परामर्शदाता की सी होती है। मन्त्रियों की नियुक्ति भी प्रधान ही करता है और वही अपनी इच्छा से उन्हें पदच्युत भी कर सकता है। अमरीका में इसी प्रकार की प्रधानात्मक राज्य-प्रणाली प्रचलित है।

इसके विपरीत पार्लियामैण्टरी या मंत्रिमण्डलात्मक शासन-पद्धति में शासन की सत्ता मंत्रिमण्डल के हाथ मे रहती है। राजा या प्रधान नाममात्र का प्रभु होता है। ये मंत्री प्रायः जनता के प्रतिनिधियों में से चुने जाते है। ये लोग बिल (प्रस्तावित कानून) पेश करते हैं, जिन्हे "प्रतिनिधि-वर्ग" तथा "शिष्ट-वर्ग" स्वीकार करते हैं। तदुपरान्त राजा की स्वीकृति ली जाती है और फिर वह 'कानून' बन जाता है। यह मंत्रिमण्डल जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी है,

की स्थापना होती है, जो इन के अधिकारो का निर्णय करता है।
इस प्रणाली में स्थानीय सरकारें अपने २ प्रान्तो में अपनी २
परिस्थिति और रुचि के अनुसार कार्य करने मे स्वतंत्र हैं। केन्द्रीय
सरकार का इन के कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं होता। राष्ट्र की भौगो-
लिक विशालता, धर्मभिन्नता, संस्कृति की भिन्नता आदि कारणो से
नये विधान के अनुसार भारत के लिये भी संघशासन-प्रणाली की
योजना की गई है। अमरीका के सयुक्त प्रान्त, दक्षिणी अफरीका के
सघ और कनेडा आदि में यही सघप्रणाली प्रचलित है।

इस से स्पष्ट है कि आज संसार भर के सभ्य राष्ट्रो में जनतंत्र का
अंश पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। प्रणाली चाहे कोई भी हो, उसमें
राष्ट्र-हित के समन्वय के लिये जनतंत्र के आधार-नियम पुष्कल मात्रा
में समाविष्ट कर दिये गये हैं। अतः आज जनतंत्र का ही प्रचार है।
यही सर्वव्यापक है। नीचे इस के प्रधान अङ्गो का वर्णन करते हैं।

राज्य के अंग या प्रभु-सत्ता का विभाजन

जनतंत्र प्रणाली में राज्य के समग्र कार्य-भार को सुचारु रूप से
चलाने के लिये "प्रभु-सत्ता" को तीन भागो में बांटा गया है। इन्हें
व्यवस्थापन अधिकरण (लैजिस्लेचर), अनुशासन अधिकरण (एग्जे-
क्टिव) तथा न्याय अधिकरण (जुडीशिअरी) कहते हैं। इनमें व्यव-
स्थापन अधिकरण का काम है कानून बनाना, अनुशासन अधिकरण
का काम है कानून का व्यवहार मे पालन कराना तथा न्याय अधिकरण
का काम है कानून का प्रयोग या कानून की व्यवस्था या व्याख्या
करना।

की स्थापना होती है, जो इन के अधिकारो का निर्णय करता है। इस प्रणाली मे स्थानीय सरकारें अपने २ प्रान्तो में अपनी २ परिस्थिति और रुचि के अनुसार कार्य करने मे स्वतंत्र हैं। केन्द्रीय सरकार का इन के कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं होता। राष्ट्र की भौगोलिक विशालता, धर्मभिन्नता, संस्कृति की भिन्नता आदि कारणों से नये विधान के अनुसार भारत के लिये भी संघशासन-प्रणाली की योजना की गई है। अमरीका के संयुक्त प्रान्त, दक्षिणी अफरीका के सघ और कनेडा आदि में यही संघप्रणाली प्रचलित है।

इस से स्पष्ट है कि आज संसार भर के सभ्य राष्ट्रों में जनतन्त्र का अंश पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। प्रणाली चाहे कोई भी हो, उसमें राष्ट्र-हित के समन्वय के लिये जनतन्त्र के आधार-नियम पुष्कल मात्रा में समाविष्ट कर दिये गये हैं। अतः आज जनतंत्र का ही प्रचार है। यही सर्वव्यापक है। नीचे इस के प्रधान अङ्गो का वर्णन करते हैं।

राज्य के अंग या प्रभु-सत्ता का विभाजन

जनतंत्र प्रणाली में राज्य के समग्र कार्य-भार को सुचारु रूप से चलाने के लिये "प्रभु-सत्ता" को तीन भागों मे बांटा गया है। इन्हें व्यवस्थापन अधिकरण (लैजिस्लेचर), अनुशासन अधिकरण (एग्जेक्टिव) तथा न्याय अधिकरण (जुडीशिअरी) कहते हैं। इनमें व्यवस्थापन अधिकरण का काम है कानून बनाना, अनुशासन अधिकरण का काम है कानून का व्यवहार में पालन कराना तथा न्याय अधिकरण का काम है कानून का प्रयोग या कानून की व्यवस्था या व्याख्या करना।

समयो में ये तीनो प्रभु-सत्ताएं एक ही व्यक्ति—राजा—के हाथ में होती थीं ।

एक ही व्यक्ति मे तीनो सत्ताओ के होने से व्यक्ति-गत स्वतंत्रता और सुव्यवस्था नही रह सकती। यदि अपराधी के अपराध का निर्णय उसी व्यक्ति पर छोड़ दिया जाय जो उसे अपराधी समझ कर पकडता है (पोलीस), तो न्याय की आशा नही की जा सकती। कारण कि पोलीस का किसी को पकडना ही पोलीस के निर्णय है। अर्थात् एक सिपाही जब किसी अपराधी को पकड़ता है तो सिपाही का निर्णय तो पहले ही प्रगट हो चुका। सिपाही ने जब निर्णय किया कि यह अपराधी है, तभी तो उसे पकड़ा। फिर पोलीस को निर्णय का अधिकार देना व्यर्थ है। अतः इन तीनों सत्ताओं का पृथक रहना ही राष्ट्र और व्यक्ति के लिये श्रेयस्कर है। इसी से निष्पक्ष न्याय पर आस्था की जा सकती है। नीचे हम इन तीनों अधिकरणों का साधारण विवरण देते हैं।

व्यवस्थापन अधिकरण

राज्य-सत्ता के उक्त तीनों अधिकरणों में व्यवस्थापन ही मुख्य है। अनुशासन और न्याय अधिकरण तो व्यवस्थापन अधिकरण के उपजीवक अङ्ग हैं। राष्ट्र में किन नियमों के आधार पर राज्य हो, किन नीतियों का अवलम्बन किया जाय और कैसे कानून बनाए जाएं, इन सब बातों का निर्णय व्यवस्थापन ही करता है। इनका निर्णय हो जाने पर ही तदनुरूप अनुशासन और न्याय के अधिकरण अपना २ कार्य करते हैं। इन अधिकरणों के संचालन के लिये अपेक्षित धन का निर्देश भी व्यवस्थापन विभाग ही करता है। यह निर्विवाद रूप

और अपर हाउस की रचना प्राय: परोक्षनिर्वाचन से की जाती है। अर्थात् उसके सदस्य जनता के चुने हुए प्रतिनिधियो द्वारा चुने जाते हैं। कहीं २ अन्य प्रकार से भी 'अपर हाउस' का निर्माण होता है। कहीं इसके सदस्य जीवन सदस्य होते हैं, और कहीं इनकी अवधि लोअर हाउस के सदस्यो से कुछ अधिक होती है। नये विधान के अनुसार भारत में बंगाल, बम्बई, मद्रास, आसाम, यू० पी० और विहार में द्वैध-व्यवस्थापन नियत किया गया है और अन्य प्रान्तो में एकविध व्यवस्थापन है।

द्वैध-व्यवस्थापन का लाभ यह है कि इससे लोअर हाउस की क्षिप्रकारिता पर एक प्रकार का नियंत्रण रहता है। लोअर हाउस में जनता के प्रतिनिधि होते हैं जो प्रायः राजनैतिक प्रतिभा के विचार से बहुत अनुभवी, दूरदर्शी या विचारशील नहीं होते। इसलिये किसी नीति या कानून पर गम्भीरता से विचार करने के लिये कुछ देर लगाना आवश्यक है। इससे उपयुक्त शान्त वायुमण्डल उत्पन्न हो जाता है। यह देर लगाने का काम 'अपर हाउस' करता है।

कई लोग इसे व्यर्थ समझते हैं। उन का कहना है कि यदि अपर हाउस, लोअर हाउस से सहमत हो तो यह अनावश्यक है और यदि यह जनता के साक्षात् प्रतिनिधियो (लोअर हाउस) के विरुद्ध हो तो यह जनतंत्र के विरुद्ध है। इस लिये इसका अस्तित्व व्यर्थ ही है।

मंत्रिमण्डल या कैबिनेट

व्यवस्थापिका सभा में से एक मंत्रिमण्डल का निर्माण किया जाता है। कहीं-कहीं जनता पृथक् रूप से इस का निर्वाचन करती है—जैसे अमरीका में। इंग्लिस्तान तथा भारत में बहुसंख्यक दल के प्रधान नेता को सम्राट् अथवा गवर्नर, प्रधान मंत्री नियत करता है और वह शेष

जातियों की हानि होती है। इस दोष को दूर करने के लिये द्वितीय प्रकार के निर्वाचन का प्रादुर्भाव हुआ है। पर यह उद्देश्य और भी कई प्रकार से पूरा हो सकता है। अल्प-संख्यक दलो के लिये स्थान नियत कर दिये जाएं और निर्वाचन सम्मिलित रूप से हो, तो इससे उक्त उद्देश्य की पूर्ति भी हो जाती है और साम्प्रदायिक निर्वाचन के दुर्गुण भी उत्पन्न नहीं होते।

इतने बड़े सार्वजनिक निर्वाचनो मे निर्वाचन की 'गुप्त रीति' का ही अवलम्बन किया जाता है। प्रकट रूप से वोट देने से मतदाता पर बहुत प्रकार के दबाव पड़ सकते हैं जिससे उसकी निजी स्वतंत्रता मारी जाती है। दूसरे वृथा कलह और झगड़े भी बहुत बढ़ जाते हैं। अतः प्रत्येक मत-दाता गुप्त रीति से ही वोट देता है ऐसा नियम सर्वत्र विद्यमान है। इस गुप्त रीति को 'बैलट् सिस्टम्'' कहते हैं।

अनुशासन अधिकरण

व्यवस्थापन अधिकरण लोक-हित की दृष्टि से जिन कानूनो का निर्माण करता है और जिन नीतियो और सिद्धान्तों का निर्धारण करता है, उनको कार्य मे परिणत करना, उन पर अमल करना और राष्ट्र से उनका पालन कराना अनुशासन अधिकरण का कार्य है। इस प्रकार राज्य या हकूमत वस्तुतः इसी अधिकरण के हाथ में होती है। कानून बना देने मात्र से उन पर अमल नहीं हो जाता। चोर, डाकू और आततायियो के उपद्रव शान्त नहीं हो जाते। कानून को कार्य में परिणत करना, उन पर अमल करवाना और दुष्टो और स्वार्थियो के दिल में कानून का डर बिठाना, वास्तव में योग्य और निपुण अनुशासन अधिकरण का ही काम है। देश की शान्ति, एवं प्राण और सम्पत्ति

भी राज्य का काम नहीं चल सकता। राष्ट्र का हित इसी में है कि ये तीनो अङ्ग परस्पर सहकारिता से अपने २ कर्तव्य का पालन करें। वस्तुतः-ये तीनो अङ्ग परस्पर सापेक्ष हैं। व्यवस्थापन अपने कानूनो के यथावत् पालन के लिये अनुशासन का सापेक्ष है और अनुशासन अपनी गति-विधि के लिये व्यवस्थापन की अपेक्षा रखता है। इसी प्रकार न्यायाधिकरण इस बात को देखता है कि जनता की इच्छा से व्यवस्थापन के बनाए हुए कानूनों को शासन-वर्ग ठीक प्रकार से चला रहा है—कहीं कानून का व्याघात तो नहीं किया जा रहा। इससे वह व्यवस्थापन का सहायक है और व्यवस्थापन न्याय अधिकरण का उपजीव्य है। अनुशासन अधिकरण यदि न्याय से अपराधियो को दण्ड न दिलाए तो उसका प्रबन्ध भी नहीं चल सकता। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये तीनो अधिकरण परस्पर सापेक्ष और परस्पर आश्रित हैं।

इसी प्रकार व्यवस्थापन मे अनुशासन का अंश (मंत्रिमण्डल के रूप में) सम्मिलित है और अनुशासन में व्यवस्थापन (आर्डीनेंस आदि) का अंश मिला हुआ है। न्याय में व्यवस्थापन का अंश इस रूप में है कि कई बातों मे किसी कानून के संबन्ध में जज की व्याख्या ही कानून का रूप धारण कर लेती है, जिस का पालन करना अनुशासन के लिये आवश्यक होता है। इस प्रकार ये तीनों अधिकरण एक दूसरे से मिले हुए भी हैं। इन्हें सर्वथा पृथक् कर देने से काम नहीं चलता।

इनकी पृथकता का वास्तविक अर्थ यह है कि एक ही व्यक्ति में शासन और न्याय के अधिकार नहीं होने चाहियें। न्यायाधिकरण और अनुशासनाधिकरण के व्यक्ति अवश्य भिन्न २ होने चाहिये।

प्रति-दिन उपस्थित होने वाली समस्याओ पर गूढ विचार करने के योग्य होना चाहिये।

शासन सम्बन्धी कार्यों में जनता को सदा सावधान होकर कडी दृष्टि रखनी चाहिये। प्रबल लोक-मत, स्वतंत्र एवं निर्भय प्रेस और निरन्तर सहयोग जन-तन्त्र को वस्तुत. स्वराज्य बनाने में परम सहायक हैं। अन्यथा बेचारी प्रजा तो राज्य की मशीनरी के नीचे ही दब जायगी और अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी खो बैठेगी।

भारतीय शासन-विधान का विकास

भारतीय शासन-विधान के वर्तमान स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि भारतीय शासन-विधान का विकास किस प्रकार हुआ है—किन परिस्थितियो मे और किन प्रयत्नो के द्वारा भारतीय तथा ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने इसे यह रूप देने में सफलता प्राप्त की है। नीचे संक्षेप मे इसका परिचय दिया जाता है।

आदि काल (१६००—१७५७)

३१ दिसम्बर, सन् १५९९ को भारत और ब्रिटेन के सपर्क का जन्म-दिन—या अधिक सत्यता से, बीजारोपण का दिन—मानना चाहिये। उस दिन इंगलिस्तान की महारानी एलेजिबिथ ने एक ऐसे शासन-पट्ट पर हस्ताक्षर किये थे जिसके अनुसार एक व्यापारी कपनी—ईस्ट इण्डिया कंपनी—का प्रादुर्भाव हुआ। इस कपनी को पूर्वी देशों में व्यापार करने का एकाधिकार (मोनोपोली) दिया गया। इसका कार्य एक गवर्नर और २४ सदस्यों की एक समिति के हाथ में रखा गया। सदस्यों का चुनाव प्रतिवर्ष नियत हुआ और इसके बदले में ब्रिटिश-राज्य का कंपनी के मुनाफे में पर्याप्त हिस्सा रखा गया।

प्रति-दिन उपस्थित होने वाली समस्याओ पर गूढ विचार करने के योग्य होना चाहिये।/

।शासन सम्बन्धी कार्यों में जनता को सदा सावधान होकर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिये। प्रबल लोक-मत, स्वतंत्र एव निर्भय प्रेस और निरन्तर सहयोग जन-तत्र को वस्तुत. स्वराज्य बनाने मे परम सहायक हैं। अन्यथा बेचारी प्रजा तो राज्य की मशीनरी के नीचे ही दब जायगी और अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी खो बैठेगी।/

भारतीय शासन-विधान का विकास

भारतीय शासन-विधान के वर्तमान स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि भारतीय शासन-विधान का विकास किस प्रकार हुआ है—किन परिस्थितियों मे और किन प्रयत्नो के द्वारा भारतीय तथा ब्रिटिश राजनीतिज्ञो ने इसे यह रूप देने में सफलता प्राप्त की है। नीचे सक्षेप मे इसका परिचय दिया जाता है।

आदि काल (१६००—१७६५)

३१ दिसम्बर, सन् १५९९ को भारत और ब्रिटेन के सपर्क का जन्म-दिन—या अधिक सत्यता से, बीजारोपण का दिन—मानना चाहिये। उस दिन इंगलिस्तान की महारानी एलेज़िबिथ ने एक ऐसे शासन-पट्ट पर हस्ताक्षर किये थे जिसके अनुसार एक व्यापारी कंपनी—ईस्ट इण्डिया कपनी—का प्रादुर्भाव हुआ। इस कपनी को पूर्वी देशों मे व्यापार करने का एकाधिकार (मोनोपोली) दिया गया। इसका कार्य एक गवर्नर और २४ सदस्यों की एक समिति के हाथ में रखा गया। सदस्यों का चुनाव प्रतिवर्ष नियत हुआ और इसके बदले मे ब्रिटिश-राज्य का कंपनी के मुनाफे में पर्याप्त हिस्सा रखा गया।

इसके पश्चात् सन् १७०७ मे भारत-सम्राट् औरंगजेब की मृत्यु के कारण भारत की राजनैतिक दुर्बलता से लाभ उठाते हुए इन्होंने राज्य-सत्ता का संग्रह करना शुरू किया और कई युद्धो मे भाग लिया। सन् १७६३ तक ये अन्य युरोपीय व्यापारियो को परास्त कर के प्रायः बंगाल, मद्रास और बम्बई के अधिपति बन चुके थे।

इस काल का शासन-प्रबन्ध

उक्त तीनो प्रदेशो को ये लोग 'प्रेजिडैंसी' के नाम से पुकारते और कलकत्ता, मद्रास तथा बबई क्रमशः इन तीनो प्रान्तो की राजधानियां थीं जिन्हें 'प्रेजिडैंसी टाउन' कहा जाता था, इन तीनो प्रदेशो का प्रबन्ध एक २ प्रेजिडैण्ट और उसकी कौंसिल के अधीन था। कौंसिलों के सदस्य कपनी के प्रमुख भृत्यो मे से ही नियुक्त किये जाते थे। प्रत्येक प्रेजिडैसी की फैक्टरिया तथा दुर्ग आदि इतर सम्पत्ति वहीं के प्रेजिडैंट और कौसिल के अधिकार में थी। ये तीनों प्रेजिडैण्ट और उनकी कौंसिलें परस्पर निरपेक्ष रूप से स्वतंत्र थीं और अपनी अपनी स्वतत्र नीति का अनुसरण करती थी। एक का दूसरे में कोई हस्तक्षेप न था। इग्लिस्तान में कपनी का प्रबन्ध डायरेक्टर' लोग करते थे। इस काल में किसी और वैज्ञानिक शासन के दर्शन नहीं होते।

पूर्व मध्य-काल १७६५-१८५७

सन् १७६५ में क्लाइव ने देहली के सम्राट् शाहआलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की 'दिवानी' के अधिकार प्राप्त किये और उनके बदले में सम्राट् को २६ लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया। इसी समय बंगाल के नवाब ने भी ५० लाख रुपये की वार्षिक वृत्ति के

आचुका था। लार्ड हेस्टिङ्ग ने वैल्जली के कार्य मे पूर्णता की। उस ने मरहटो की शक्ति का दमन किया और लार्ड अम्हर्स्ट ने १८२४ में बरमा को अपने अधीन कर लिया। लार्ड एलनबरो ने १८४३ मे सिन्ध को और लार्ड डलहौजी ने १८४६ मे पंजाब को अपने अधिकार मे ले लिया। इस प्रकार प्रायः समूचा भारत अंग्रेजो के वश मे आ गया।

इस काल में शासन-विधान का विकास

अब कम्पनी की बाग-डोर सम्राट् के हाथ से निकल कर पार्लियामैण्ट के हाथ मे आ गई थी। कंपनी के कुशासन और अत्याचारो की सूचना पार्लियामैण्ट को मिलती रहती थी। पार्लियामैंट यह सहन नहीं कर सकती थी कि इतने बड़े समृद्ध देश की आय का लाभ केवल एक व्यापारी कंपनी या उसके कुछ हिस्सेदार ही उठाएँ। दूसरे उन्होंने इस बात को भी अनुभव किया कि राज्य-सत्ता का व्यापारी लोगो के हाथ मे रहना, न तो भारतीयो के लिये हितकर है, न इंग्लिस्तान के लिये शोभाप्रद। अतः पार्लियामैंट समय २ पर कंपनी के शासन-विधान मे हस्तक्षेप करती रही और शनैः २ भारत का प्रबन्ध कंपनी के अधिकार से हटा कर अपने हाथ में लेती रही।

रेगुलेटिंग ऐक्ट १७७३—सब से पहले लार्ड नार्थ के प्रधान-मंत्रित्व में सन् १७७३ में पार्लियामैण्ट ने एक ऐक्ट पास किया जिसे आधुनिक भारतीय-शासन की नीव कह सकते हैं। इसके अनुसार कंपनी के डायरेक्टरो को केवल व्यापार और आर्थिक बातों में स्वतन्त्रता दी। शासन सम्बन्धी कार्यो को नियमित करने के लिये बंगाल में से 'एक प्रैजिडैण्ट और कौंसिल' की पुरानी रीति को हटा दिया गया और राज्य के कार्य के लिये बंगाल के गवर्नर जनरल बना दिया गया। इस

१७८४' कहते हैं। इसके अनुसार गवर्नर जनरल के अधिकार बढ़ा दिये गये। अब वह कौंसिल के बहुमत का उल्लंघन कर सकता था। इस ऐक्ट की एक अत्यन्त महत्व की बात यह थी कि इसके अनुसार लंदन में एक बोर्ड आफ कंट्रोल (नियंत्रण समिति) का निर्माण किया गया जिसका काम भारत के शासन और प्रबन्ध सम्बन्धी बातों में नियन्त्रण और निगरानी करना था। इसके ६ सदस्य नियत किये गये, जिन्हें 'कमिश्नर' कहते थे।

इस प्रकार १७८४ मे भारत के शासन के सम्बन्ध में लंदन में दो काय-समितियां काम करने लगी। एक तो लीडन हाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मालिक अपना कार्यालय चला रहे थे, दूसरे इस बोर्ड ने वैस्टमिंस्टर में अपना नया कार्यालय खोल लिया। ये लोग ब्रिटिश गवर्नमैण्ट की ओर से कंपनी के कामो का निरीक्षण करते थे। कानून के अनुसार भारत पर कंपनी का अधिकार था, पर कंपनी की जांच तथा निगरानी के निमित्त से शासन का संचालन यह बोर्ड करता था। परिणामतः भारत को तभी से इस द्वैध-शासन को झेलना पड़ रहा है। विलियम पिट् का यह ऐक्ट कुछ २ परिवर्तनो के साथ १८५८ तक चलता रहा।

चार्टर ऐक्ट, १७९३—इसके अनुसार गवर्नर जनरल के अधिकारों का स्पष्टीकरण किया गया और उधर लंडन में "बोर्ड आफ कंट्रोल" के प्रथम सदस्य को "सभापति" का पद दिया गया। इससे 'बोर्ड' तो नाममात्र को ही रह गया और सारा अधिकार 'सभापति' के हाथ में चला गया। इसको 'मंत्रिमण्डल' में भी स्थान दिया गया। निकट भविष्य में यही 'सभापति' "भारत सचिव" के रूप में परिणत हुआ और वह 'बोर्ड' 'इण्डिया कौंसिल' में बदल गया।

कर सर्वथा 'राजनैतिक मण्डली' बन गई। इस के साथ ही बगाल
गवर्नर जनरल को अब 'गवर्नर जनरल आफ इण्डिया' बना दि
गया। सारे भारत का निरीक्षण और नियत्रण इसके सिपुर्द
इसकी कौंसिल मे भी एक 'लॉ मैम्बर' की वृद्धि की गई, जि
काम कानून बनाना था। लार्ड मैकाले सब से प्रथम 'लॉ मैम्बर' बना।
भारतीय दण्ड-विधान—ताजिरात हिन्द या इण्डियन पीनल कोड—
इसी के परिश्रम का फल है।

चार्टर ऐक्ट १८५३—इस ऐक्ट मे इस बात को फिर दोहराया
गया कि 'भारत कपनी के पास ब्रिटिश गवर्नमैण्ट की अमानत है
यह तब तक उसके पास रहेगी जब तक पार्लियामैण्ट कोई और निर्णय
नहीं करती'। इससे यह स्पष्ट है कि कपनी के दिन अब गिने हुए थे।
इस ऐक्ट के अनुसार बंगाल के लिये एक पृथक् लैफटीनैण्ट गवर्नर की
नियुक्ति की गई। इससे गवर्नर जनरल को केवल निखिल भारतीय
समस्याओं पर विचार करने की सुविधा प्राप्त हुई। इसके साथ ही गवर्नर
जनरल की कौंसिल के अतिरिक्त एक और लेजिस्लेटिव कौंसिल की
स्थापना की गई जिसके १२ सदस्य नियत किये गये। ये सदस्य शासक-
वर्ग में से ही लिये जाते थे। इसी ऐक्ट के अनुसार भारत का प्रान्तों
में विभाग किया गया और प्रान्तों की सीमाओं का निर्धारण करने का
काम गवर्नर जनरल को सौंपा गया।

उत्तर मध्य-काल (१८५७-१९१९)

ब्रिटिश राज्य के प्रतिनिधि बन कर भी कंपनी के शासनव्यवहार में
कोई सुधार न हुआ। प्रजा उससे सन्तुष्ट न थी। प्रजा में प्रतिदिन
विद्रोह के भाव फैलने लगे। निदान १८५७ में इतिहास-प्रसिद्ध विद्रोह या

इंडियन कौंसिल्ज़ ऐक्ट १८६१—यह ऐक्ट भारत में ब्रिटिशराज्य के इतिहास में युग-प्रवर्तक ऐक्ट था। इस में पहली वार भारतीयो को 'जन-तन्त्र' के दूर से दर्शन कराये गये थे। इस के अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापन अधिकरण की स्थापना की गई। बंबई और मद्रास में १८६१ में, बंगाल मे १८६२ मे, पश्चिमोत्तरी प्रदेशों में १८८६ मे और पंजाब मे १८९७ मे सर्वप्रथम प्रान्तीय व्यवस्थापन का प्रारम्भ हुआ। ये प्रान्तीय व्यवस्थापन केवल 'कानून बनाने' में 'विमर्श-समिति' के रूप में थे। कानून भी गवर्नमेंट की ओर से पेश किये जाते थे और यह भी आवश्यक नहीं था कि उनकी राय मान ही ली जाय। वायसराय को कुछ गैरसरकारी भारतीय सदस्य भी केन्द्रीय व्यवस्थापन में नियत करने का अधिकार दिया गया। इस ऐक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल को एक और अधिकार दिया गया जिसका प्रयोग वह आज तक करता आया है। वह है 'आर्डीनेंस' जारी करना, अर्थात् विशेष परिस्थिति मे गवर्नर जनरल बिना कानून के भी ६ मास के लिये अपनी जिम्मेवारी पर ऐसी आज्ञाएं जारी कर सकता है जो 'कानून' की शक्ति रखती हैं।

इंडियन कौंसिल्ज़ ऐक्ट १८९२—ब्रिटिश सरकार का भारतवर्ष के प्रबन्ध को अपने हाथ में लेना भारत के लिये अत्यन्त हितकर प्रमाणित हुआ। सारे देश का प्रबन्ध, शिक्षा और कानून एकसूत्रता में बांध दिये गये। राजनैतिक रूप में एकवाक्यता का भान होने से राष्ट्रीय भावो की जागृति हुई। साथ ही देश बाहरी आक्रमणों के भय से मुक्त हुआ। कलकत्ता, मद्रास और बंबई में १८५७ मे ही यूनिवर्सिटियां स्थापित थीं*। शिक्षा-विभाग की स्थापना भी

* पंजाब यूनिवर्सिटी की स्थापना १४ अक्टूबर सन् १८८२ को हुई।

पश्चिमी साहित्य के संपर्क ने शिक्षित समाज की आंखें खोल दीं। कांग्रेस का प्रभाव और शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई। रूस पर जापान की विजय ने राष्ट्रीय भावों को अत्यधिक उद्दीप्त कर दिया। इधर 'बंगाल के विभाजन' ने राजनैतिक अशान्ति उत्पन्न कर दी। इन सब बातों ने ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को भारतीय शासन विधान में कुछ संशोधन करने पर विवश कर दिया। उक्त ऐक्ट, इसी का फल था। इसे 'मिण्टो-मौर्ले संशोधन' भी कहते हैं, कारण कि इस समय लार्ड मिण्टो भारत के वायसराय थे और लार्ड मौर्ले 'भारत मंत्री' थे। दोनों के प्रयत्न और सहयोग से यह ऐक्ट बना था।

इस ऐक्ट के अनुसार पहली बार भारतीय प्रजा को साक्षात् निर्वाचन का अधिकार दिया गया। लैजिस्लेटिव कौंसिलों को 'बजट' पर वोट देने तथा शासन सम्बन्धी सुधारों को ' प्रस्ताव ' के रूप में सरकार के सन्मुख प्रस्तुत करने का अधिकार मिला। अर्थात् व्यवस्थापन अधिकरण अभी शासन अधिकरण के नियंत्रण में ही रहा। इम्पीरियल कौंसिल में सरकारी सदस्यों की बहुसंख्या रही पर प्रान्तीय कौंसिलों में गैरसरकारी सदस्यों की छोटी सी बहुसंख्या कर दी गई। वायसराय की एक्जीकिउटिव कौंसिल में एक भारतीय सदस्य की नियुक्ति की गई। बंगाल, मद्रास और बंबई की एक्जीकिउटिव कौंसिलों में भारतीय सदस्य लिये गये। भारत-मंत्री के कार्यालय में दो भारतीयों की नियुक्ति भी स्वीकृत हुई। पर गवर्नर जनरल और प्रान्तीय लैफ्टिनैंट गवर्नरों को लैजिस्लेचर के फैसले रद्द करने के पर्याप्त अधिकार दिये गये। अर्थात् नूतन कौंसिलें शासन पर प्रभाव-मात्र रखती थीं, वस्तुतः इनका शासन पर न कोई वश था, न नियंत्रण। ना ही शासन अधिकरण व्यवस्थापन के प्रति उत्तरदायी था।

के देहली दरबार की घोषणा है। भारत के इतिहास में यह एक अनूठा समय था जब कि बरतानिया के महाराज ने प्रथम बार भारत की भूमि पर पदार्पण किया। इस घोषणा मे यह स्पष्ट किया गया कि भारतीयों के उचित अधिकारो को शनैः २ दिया जायगा और यथासमय स्व-तंत्र के नियमो को प्रान्तीय कौंसिलो मे समाविष्ट किया जायगा जिस-से प्रान्त स्वतंत्र रूप मे भारतीय सरकार की देख रेख में रहेंगे। भारतीय सरकार कु-शासन की अवस्था में ही प्रान्तो में हस्तक्षेप करेगी भारतीय सरकार किसी प्रान्तविशेष से सम्बद्ध न रहे,

सन् १९११ में भारतीय सरकार की राजधानी कलकत्ता से कर देहली लाई गई।

१९१४ का महायुद्ध—ज्यो ज्यो ब्रिटिश पार्लियामैंट भार विधान में संशोधन करती जाती थी, त्यो त्यो भारत की नौकर शाही अधिक से अधिक दमन-नीति का अवलम्बन करती जाती थी। १९०५ का बंगाल-विभाग का आन्दोलन अभी सुलग ही रहा था। देश में राजनैतिक अशान्ति थी। कांग्रेस मे नरम-दल और गरम-दल नाम से दो दल बन गये थे। विद्रोही प्रवृत्तियां भी गुप्त रूप में अपना काम कर रही थीं। गरम-दल के नेता स्वराज्य की मांग कर रहे थे। इधर सरकार ने दमन-नीति का आश्रय लिया और राष्ट्रवादियों को पकड़ कर जेल में डाल दिया। इससे राजनैतिक आन्दोलन और भी भड़क उठा।

इस समय फिर ब्रिटिश राजनीतिज्ञ भारतीय विधान में उचित संशोधन का विचार कर ही रहे थे कि १९१४ में यूरोप में विकट महायुद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में ब्रिटिश मंत्रियों ने घोषणा की कि हम जर्मनी, आस्टरिया और टर्की के साथ यह युद्ध केवल दुर्बल

स्वीकार किया गया था। आटोक्रेसी से डैमोक्रेसी की ओर प्रगति हुई थी।

इस घोषणा के बाद मि. माण्टेग भारतवर्ष में आए। यहां उन्हों ने उस समय के वायसराय लार्ड चैम्सफोर्ड के साथ सारे भारत का दौरा किया और मुख्य २ व्यक्तियो से परामर्श भी किया। सन् १९१८ में उन्हों ने 'माण्टेग-चैम्सफोर्ड रिपोर्ट' प्रकाशित की जो गवर्नमैण्ट आफ इण्डिया ऐक्ट, १९१९ की आधार बनी।

वर्तमान-काल (१९१९ से)

१९१९ का ऐक्ट उक्त देहली दरबार तथा मिस्टर माण्टेग की घोषणाओ का ही साकार स्वरूप था। इससे भारत में 'स्वराज्य' के साक्षात् दर्शन होने लगे। इसमें मुख्यतः इन बातो का निर्देश था—

(१) भारत ब्रिटिश-साम्राज्य का एक अङ्ग रहेगा।

(२) भारत मे उत्तरदायी शासन स्थापन करना ब्रिटिश सरकार का ध्येय है।

(३) भारत मे उत्तरदायी शासन शनैः २ स्थापित किया जायगा।

(४) इसकी पूर्ति के लिये ये साधन प्रयोग मे लाये जाएंगे—

(क) शासन के भिन्न २ विभागों मे भारतीयों का अधिकाधिक संख्या में समावेश करना (भारतीय करण)।

(ख) स्वराज्य-संस्थाओ का शनैः २ बढ़ाना और इनके लिये दस वर्ष के बाद एक 'रायल कमिशन' को नियुक्त करना जो भारत के भावी विधान के सम्बन्ध मे पार्लियामैण्ट को राय दे सके।

(ग) प्रान्तीय स्वराज्य का शनैः २ स्थापन करना अर्थात् प्रान्तोंको 'भारत सरकार' के नियंत्रण से मुक्त करना।

आर्डीनेंस तक जारी कर सकता था और हर प्रकार से स्वतंत्र उसे केवल भारत-सचिव की संमति लेनी होती थी।

असहयोग आन्दोलन—यद्यपि यह ऐक्ट भारतीय स्वराज्य ओर एक निश्चित पग था, तथापि भारतीय राजनीतिज्ञो ने ? स्वागत नहीं किया। उनका कहना था, कि यह "शनैः शनैः" न ज कब समाप्त होगा। दूसरे, स्वराज्य की दूसरी किश्त देने का ।प। उक्त 'रायल कमिशन की रिपोर्ट' रखा गया था। इसे भारतीय नेता ने अपना अपमान समझा। तीसरे, १६१६ के प्रारम्भ में ही 'रौलट ऐक्ट' के कारण पंजाब में जनरल डायर के द्वारा अमृतसर के जलियां-वाला बाग का भीषण हत्याकाण्ड और 'मार्शल-ला' हो चुके थे। पंजाब के गवर्नर ओडवायर ने बड़ी क्रूर दमननीति का आश्रय लिया। देश के नेताओ को जेलों मे भर दिया। इधर टर्की के सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने खिलाफत आन्दोलन को जन्म दिया और 'असहयोग' की घोषणा करके कौंसिलो, स्कूलो तथा न्यायालयो आदि का पूर्ण बहिष्कार किया। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, स्वदेशी प्रचार, अछूतोद्धार, और जातीय-शिक्षा आदि इस असहयोग आन्दोलन के क्रियात्मक अङ्ग थे। इस प्रकार १६१६ के विधान को वह उपयोगी परिस्थिति न मिली, जो इसके सफल होने के लिये आवश्यक थी।

साइमन कमिशन—उक्त ऐक्ट की धारा ८४ के अनुसार दस वर्ष के पश्चात् भारतीय परिस्थिति का अध्ययन और भारतीयों की 'स्वराज्य-प्राप्ति की योग्यता' की रिपोर्ट करने के लिये ब्रिटिश पार्लिया-मैंट में एक 'रायल कमिशन' की नियुक्ति करनी थी, पर भारतीय नेताओं की मांग के कारण दश वर्ष से पहले ही १६२७ में यह कमिशन नियुक्त कर दिया गया। इसके प्रधान सर जान साइमन थे। ब्रिटिश पार्लिया-

महात्मा गांधी के नेतृत्व मे 'सवैध आज्ञा-भङ्ग (सिविल नाफरमानी अन्दोलन को जारी किया। इस अन्दोलन को पर्याप्त सफलता और थोड़े ही समय मे ५०००० के लगभग व्यक्ति जेलो में चले गये।

प्रथम गोलमेज कान्फ्रेंस—१२ नवम्बर, १६३० को लंडन प्रथम गोलमेज कान्फ्रेंस हुई। इसके ८६ सदस्य थे, जिनमें १६ भारतीय रियासतो और ५७ ब्रिटिश भारत की ओर से निर्धारित किये गये थे। शेष १३ ब्रिटिश राजनैतिक दलों की ओर से सम्मिलित हुए। इस कान्फ्रेंस ने भारत के लिये 'संघशासन विधान' को प्रस्तुत किया। पर कांग्रेस के बहिष्कार के कारण उन्हें इसके सफल होने की आशा नहीं थी। कांग्रेस बल को देख कर यह अनुभव किया गया कि कांग्रेस की उपेक्षा नहीं की जा सकती। निदान वायसराय ने कांग्रेस से सन्धि करने मे ही श्रेय समझा।

गान्धी-इर्विन सन्धि—१९३१ के प्रारम्भ में ही सरकार की ओर से कांग्रेस की कार्य-कारिणी समिति (वर्किङ्ग कमेटी) पर से 'अवैध' होने के प्रतिबन्ध हटा दिये गये। महात्मा गान्धी तथा अन्य नेताओं को जेल से छोड दिया गया और महात्मा गान्धी और वायसराय के मध्य सन्धि की बातचीत प्रारम्भ हो गई। परिणाम-स्वरूप मार्च १६३१ में सन्धि की घोषणा की गई। गवर्नमेण्ट ने बहुत से आर्डीनेंस हटा लिये, सिविल नाफरमानी के कैदियो को छोड़ दिया और उनकी जब्त की हुई जायदादें लौटा दीं। इधर कांग्रेस ने सिविल नाफरमानी को स्थगित कर दिया। लार्ड इर्विन के निश्चय दिलाने पर कि सुरक्षित प्रतिबन्ध या विशेषाधिकार (सेफ गार्ड्स) केवल 'भारत के हित' के लिये ही रखे जाएंगे. कांग्रेस तथा महात्मा

से और १०४ रियासतो से लिये जाएंगे। शेष ६ की नियुक्ति का अधिकार वायसराय को दिया गया है। असैंबली में ३७५ सदस्य रखने की व्यवस्था की गई है। इनमें २५० तो ब्रिटिश प्रान्तो से* और १२५ देशी रियासतों से लिये जाएंगे। असैंबली की अवधि ५ वर्ष की रखी गई है। इन दोनों सभाओ को निम्नलिखित विषयो पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है—

भारत की आन्तरिक रक्षा, विदेशनीति, करेंसी मुद्रा-विभाग डाक और तार तथा रेलवे, इन्कम टैक्स तथा समुद्री तट का कर।

संघ का अनुशासन अधिकरण—इसके भी दो भाग रखे गये हैं। स्वायत्त विषयो का शासन वायसराय और उसके ३ कौंसिलरो के अधीन रखा गया है और हस्तान्तरित विषय वायसराय तथा मंत्रि-मण्डल के हाथ में रहे हैं। यह मंत्रिमण्डल व्यवस्थापिका सभा के प्रमुख दल में से निर्धारित होगा और हस्तान्तरित विषयो में व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होगा।

संघ का न्यायाधिकरण—विधान के नियमों की व्याख्या और प्रयोग करने के लिये एक 'फिडरल कोर्ट' या संघ-न्यायालय की स्थापना की गई है। संघ के परस्पर निरपेक्ष स्वतंत्र प्रान्तो का यदि किसी वैधानिक या अधिकारो के सम्बन्ध में मत-भेद हो जाय, तो उसका निर्णय यही कोर्ट करेगा। यह शासन और व्यवस्थापन दोनों से स्वतंत्र होगा। गवर्नर जनरल भी इस को हटा नहीं सकता। प्रान्तीय और सघ मे सम्मिलित रियासतो के हाईकोर्टों की अपीलें भी यहा हो सकेंगी। कानूनी बातों में गवर्नर जनरल को परामर्श देना भी इसका

---

* पंजाब के हिस्से ३० सीटें आई हैं।

और निचले गृह को लैजिस्लेटिव असैम्बली कहते हैं। शेष प्रान्तों में एक ही गृह है और उसका नाम लैजिस्लेटिव असैम्बली है। ऊपर के गृह का निर्माण कुछ निर्धारण से और कुछ साक्षात् निर्वाचन से और कुछ परोक्ष निर्वाचन से तथा कहीं २ (बम्बई, मद्रास, यू० पी० और आसाम में) केवल साक्षात् निर्वाचन से रखा गया है। यह गृह स्थायी रहेगा। केवल प्रति तीसरे वर्ष ⅓ सदस्यों का पुनः निर्धारण या निर्वाचन होगा। लैजिस्लेटिव असैम्बली में साक्षात् निर्वाचन की प्रथा रखी गई है। निर्वाचक मण्डल साम्प्रदायिक आधार पर विभक्त किये गये हैं। असैम्बली का चुनाव प्रति पाँचवे वर्ष हुआ करेगा। इन में अब प्रान्तीय हर प्रकार के विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाये जा सकेंगे। पुरानी 'स्वायत्त विषय' और 'हस्तान्तरित विषय' वाली द्वैध प्रणाली उड़ा दी गई है। पर इसके साथ ही गवर्नर को बहुत से अधिकार दिये गये हैं गवर्नर करण, अकरण और अन्यथा-करण में प्रभु है। प्रत्येक कानून इसके परामर्श और उसकी स्वीकृति से बन सकेगा। वह असैम्बली को तोड़ सकता है और उसके स्वीकृत कानून को अस्वीकृत या रद्द कर सकता है। आर्डीनेंस भी जारी कर सकता है। पर ब्रिटिश नीति के अनुसार इन अधिकारों का प्रयोग केवल औचित्य की दृष्टि से ही किया जायगा।

प्रान्तीय अनुशासन—प्रान्त का शासन गवर्नर अपने मंत्रि-मण्डल के परामर्श से करेगा। इस मंत्रिमण्डल का निर्धारण भी गवर्नर ही लैजिस्लेटिव असैम्बली के बहु-सख्यक दल में से करेगा। इस प्रकार मंत्रिमण्डल एक ओर लैजिस्लेटिव असैम्बली के प्रति उत्तरदायी होगा दूसरी ओर उसे गवर्नर के नियन्त्रण में रहना होगा। गवर्नर मंत्रियों की बात को मानने के लिये बाध्य नहीं है। उसके लिये मंत्रियों से सलाह

कांग्रेस दल को मंत्रिमण्डल बनाने के लिये कहा गया। पर गवर्नरों के पूर्वोक्त अपरिच्छिन्न अधिकारों की विद्यमानता में कांग्रेस ने मंत्रिमंडल बनाने से इन्कार कर दिया। इस पर गवर्नरों ने अल्प-मत वालों के अस्थायी मंत्रिमण्डल बनाए। पर इन से न तो काम चल सकता था और न ये स्थायी हो सकते थे। अन्ततः कांग्रेस की मांग को मान कर गवर्नरों को यह आश्वासन देना पड़ा कि 'गवर्नर यथासम्भव मंत्रि-मण्डल के कार्य में हस्तक्षेप न करेंगे'। इस आधार पर उक्त छः प्रांतों में कांग्रेस ने अपने मंत्रिमण्डल स्थापित किये। बाद में सीमा-प्रांत तथा आसाम में भी कांग्रेस दल के मन्त्रिमण्डल बने।

१९३९ का महायुद्ध—इसके पश्चात् १ सितम्बर, १९३९ को वर्तमान महायुद्ध छिड़ गया। कांग्रेस ने फिर से 'युद्ध के उद्देश्यों' के स्पष्टीकरण तथा भारत के लिये पूर्णस्वराज्य की मांग पेश की और इसके लिये एक विधान-समिति (कांस्टिच्युएंट असेंबली) की आयोजना प्रस्तुत की। सरकार को यह स्वीकृत न थी। इस पर कांग्रेस ने युद्ध में असहयोग की घोषणा की। तदनुसार कांग्रेस के मंत्रीमण्डलों को भी त्यागपत्र देना पड़ा। इनके त्यागपत्र से प्रांतीय-विधान का काम चलना असम्भव हो गया। अतः सरकार ने वहां 'परामर्श-समितियां' स्थापित कीं। अब उनकी सहायता से गवर्नर ही उन प्रांतों का प्रबन्ध करते हैं। उन प्रांतों में नया विधान लागू नहीं है। कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिये वायसराय ने भर-सक प्रयत्न किया। अपनी कौंसिल में सदस्य वृद्धि करके इन्हें लेना चाहा। 'युद्ध समिति' में सम्मिलित होने के लिये भी इन्हें निमंत्रण दिया। अगस्त १९४० में एक घोषणा भी की जिसमें यह वचन दिया गया कि युद्ध के बाद बहुत शीघ्र भारत को "औपनिवेशिक साम्य" दे दिया जायगा। पर कांग्रेस अपने विचार

(१) भारत के वायसराय तथा गवर्नर जनरल की नियुक्ति,
(२) गवर्नरों की नियुक्ति,
(३) भारत के प्रधान-सेनापति (कमांडर इन चीफ) की नियुक्ति,
(४) फिडरल कोर्ट तथा हाई कोर्ट के जजो की नियुक्ति,
(५) 'क्षमा-दान' के अधिकार,
(६) सम्मान-पद-वितरण के अधिकार,
(७) वायसराय तथा गवर्नरो के नाम विशेष आदेश जारी करने के अधिकार।

पार्लियामैण्ट—इंगलिस्तान के राज्य-तंत्र के अनुसार वहां का राजा नाम-मात्र का प्रभु है। वस्तुतः राज्य की सारी शक्ति और अधिकार पार्लियामैंट मे ही अवस्थित हैं। अतः प्रकारान्तर से 'भारत-सम्राट्' के सब अधिकार पार्लियामैंट को ही प्राप्त हैं। उक्त सब काम करती पार्लियामैंट है, पर वे होते हैं सम्राट् के नाम से।

भारत-मंत्री—पार्लियामैंट का शासन भी उसके 'मंत्रिमंडल' पर आश्रित है। अतः वस्तुतः पार्लियामैंट के काम उसका मंत्रि-मण्डल ही करता है। मंत्रिमण्डल मे कार्य-विभाजन के अनुसार भारत के शासन और निरीक्षण का काम एक पृथक् मंत्री के अधीन है। उसे भारत-मंत्री कहते हैं। दूसरे शब्दों में सम्राट् के नाम पर होने वाले कार्य (जिन्हें पार्लियामैण्ट करती है) वस्तुतः 'भारत-मंत्री' के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। अतः भारतीय शासन का सर्वोच्चाधिकारी 'भारत-मंत्री' ही है।

और 'भारतीय विद्यार्थी विभाग' इसके अधीन होते हैं। इंग्लिस्तान में भारतीय छात्रों की सहायता भी यह करता है। इसके लिये लण्डन (२१, क्रोमवैल रोड) मे एक विशालभवन का प्रबंध किया हुआ है जहाँ भारतीय छात्र अपने निवास आदि का पृथक् प्रबन्ध करने से पूर्व कुछ सप्ताह तक ठहर सकते हैं।

भारत में

(क) निखिल भारतीय

वायसराय तथा गवर्नर जनरल—भारतीय-शासन के सर्वोच्चाधिकारी को गवर्नर जनरल कहते हैं। यह सम्राट् का स्थानापन्न हो कर भारत में रहता है। इस रूप में इसे वायसराय कहते हैं। इसकी नियुक्ति सम्राट् के द्वारा पांच वर्ष के लिये होती है। इसका वार्षिक वेतन २ लाख ५० हजार रुपया है, जो भारतीय कोष से दिया जाता है। यह सीधा सम्राट् के अधीन होता है।

ब्रिटिश राजनीति के अनुसार वायसराय उसे बनाते हैं, जो कभी भारत के संपर्क में न आया हो। इससे किसी पार्टी या दल से उसका कोई सम्बन्ध न होने से वह निष्पक्ष भाव से अपना कर्तव्य पालन कर सकता है।

सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में इसे सब प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। यह अपराधियों को क्षमा प्रदान कर सकता है। कु-शासन की अवस्था में यह देसी रियासतों में भी हस्तक्षेप कर सकता है और किसी अन्यायी राजा को गद्दी से उतार भी सकता है।

शासन-कार्य में यह एक कौंसिल से मिल कर कार्य करता है। इस

अस्वीकृत कानून को प्रमाणित करके कानून बना सकता है, उससे स्वीकृत कानून को रद्द कर सकता है और उसके बिना पूछे भी आर्डीनेंस के रूप में ६ मास के लिये स्वयं कानून जारी कर सकता है। असेम्बली से स्वीकृत कोई भी प्रस्ताव (बिल) उसकी स्वीकृत के बिना कानून नहीं बन सकता। पर इन अधिकारों को यह सदा नहीं बरतता। विशेष परिस्थिति में औचित्य के अनुरोध से तथा भारत मंत्री की अनुज्ञा से ही इनका प्रयोग किया जाता है।

(ख) प्रांतीय

गवर्नर—जो कार्य और अधिकार सर्व-भारतीय शासन में गवर्नर जनरल के हैं, प्रायः वही कार्य और अधिकार प्रान्तीय शासन में गवर्नरों को प्राप्त हैं। नये विधान के अनुसार गवर्नर की अब पृथक् कौंसिल नहीं होती। वह व्यवस्थापिका सभा के मंत्रिमण्डल के परामर्श से ही कार्य करता है। यहां भी करण, अकरण और अन्यथाकरण के उसे पूर्ण अधिकार हैं। मन्त्रिमण्डल और व्यवस्थापिका सभा से स्वीकृत बिल (प्रस्तावित कानून) को गवर्नर रद्द कर सकता है। उनके द्वारा अस्वीकृत बिल को प्रमाणित करके कानून बना सकता है और शान्ति तथा रक्षा के लिये विशेष परिस्थितियों में छः मास तक आर्डीनेंस जारी कर सकता है। व्यवस्थापिका सभा का कोई बिल गवर्नर की स्वीकृति के बिना कानून नहीं बन सकता।

प्रान्तीय प्रबन्ध के लिये भिन्न २ विभागों की स्थापना की गई है। इन्हें चार मुख्य श्रेणियों में बांट सकते हैं—(१) संरक्षण, (२) व्यापारिक, (३) अर्जन, तथा (४) सर्व-जनीन। (१) संरक्षण श्रेणी में पोलीस-विभाग, न्यायालय, जेल-विभाग, तथा शासन-कार्य विभाग

की नियुक्ति गवर्नर जनरल करता है और इन्हे सारी सत्ता ⁄ अधिकार गवर्नर जनरल से ही प्राप्त होते हैं।

कमिश्नर—भारत के कुछ प्रान्तो को कमिश्नरियो में व. किया गया है। पंजाब में पांच कमिश्नरियां हैं—अंबाला, जालन्धर, लाहौर, मुलतान और रावलपिण्डी। प्रत्येक कमिश्नरी एक उच्चाधिकारी के अधीन है जिसे कमिश्नर कहते हैं। यह अपने अधीन जिलो का निरीक्षण तथा स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं का नियन्त्रण करता है।

(ग) जिला

अंग्रेजी ।राज्य में ४-५ ग्रामो का एक 'पटवारी का हलका' (या मण्डल) बनाया गया है। लगभग ४० ग्रामो की एक जैल बनाई गई है। ६०-१०० ग्रामों पर एक पोलिस का थाना रखा गया है। ३-४ थानो की एक तहसील बनाई गई है और ३-४ तहसीलो का एक जिला रखा गया है। चार-पांच जिलो की एक कमिश्नरी नियत की गई है और ५-६ कमिश्नरियो को मिला कर प्रान्त' रखे गये हैं। इस प्रकार राज्य-कार्य की सुव्यवस्था के लिये प्रान्त के विभाग किये हैं। इनमें जिला एक महत्व पूर्ण इकाई है।

जिलाके उच्चाधिकारी को 'डिप्टी कमिश्नर' कहते हैं। कहीं २ इसे 'कोलेक्टर' भी कहा जाता है। साधारणतया यह आई सी. एस. का व्यक्ति होता है। 'डिप्टी कमिश्नर' के रूप में इसकी नियुक्ति गवर्नर करता है। यह जिले की शान्ति और सुव्यवस्था का जिम्मेवार होता है। जिले में से भूमिकर तथा इतर करो का संग्रह भी इसी का कर्तव्य है। फौजदारी अभियोगो के न्याय-कर्ता के रूप में इसे 'जिला मैजिस्ट्रेट' भी कहते हैं और इसे ''मैजिस्ट्रेट दरजा अव्वल' के अधिकार प्राप्त होते हैं। जिले भर के द्वितीय और तृतीय श्रेणी के मैजिस्ट्रेटों की

की नियुक्ति गवर्नर जनरल करता है और इन्हें सारी सत्ता और अधिकार गवर्नर जनरल से ही प्राप्त होते हैं।

कमिश्नर—भारत के कुछ प्रान्तों को कमिश्नरियों में व किया गया है। पंजाब में पांच कमिश्नरियां हैं—अम्बाला, ज। लाहौर, मुलतान और रावलपिण्डी। प्रत्येक कमिश्नरी एक उच्चाधिकारी के अधीन है जिसे कमिश्नर कहते हैं। यह अपने अधीन जिलो का निरीक्षण तथा स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं का नियंत्रण करता है।

(ग) जिला

अंग्रेज़ी राज्य में ४-५ ग्रामो का एक 'पटवारी का हलका' (या मण्डल) बनाया गया है। लगभग ४० ग्रामों की एक ज़ैल बनाई गई है। ९०-१०० ग्रामों पर एक पोलिस का थाना रखा गया है। ३-४ थानों की एक तहसील बनाई गई है और ३-४ तहसीलों का एक जिला रखा गया है। चार-पांच ज़िलों की एक कमिश्नरी नियत की गई है और ५-६ कमिश्नरियों को मिला कर प्रान्त' रखे गये हैं। इस प्रकार राज्य-कार्य की सुव्यवस्था के लिये प्रान्त के विभाग किये हैं। इनमें जिला एक महत्व पूर्ण इकाई है।

जिलाके उच्चाधिकारी को 'डिप्टी कमिश्नर' कहते हैं। कहीं २ इसे 'कोलेक्टर' भी कहा जाता है। साधारणतया यह आई सी. एस. का व्यक्ति होता है। 'डिप्टी कमिश्नर' के रूप में इसकी नियुक्ति गवर्नर करता है। यह जिले की शान्ति और सुव्यवस्था का ज़िम्मेवार होता है। ज़िले में से भूमिकर तथा इतर करों का संग्रह भी इसी का कर्तव्य है। फौजदारी अभियोगों के न्याय-कर्ता के रूप में इसे 'ज़िला मैजिस्ट्रेट' भी कहते हैं और इसे 'मैजिस्ट्रेट दरजा अव्वल' के अधिकार प्राप्त होते हैं। ज़िले भर के द्वितीय और तृतीय श्रेणी के मैजिस्ट्रेटों की

जिले का महकमा माल एक 'माल अफसर' के अधीन होता है। यह भी डिप्टी कमिश्नर के अधीन काम करता है। भूमि सम्बन्धी कई झगड़ो के न्याय के अधिकार भी इसे प्राप्त होते है। इसके नीचे 'दफतर कानूनगो' तथा कानूनगो और पटवारियो का अमला होता है। मादक द्रव्यो का विभाग भी 'माल अफसर' के अधीन होता है। उसके लिये कई 'इन्सपैक्टर' रखे हुए होते हैं। मादक द्रव्यों के लाइसैंस आदि देने का काम भी इसी के जिम्मे है।

इस प्रकार जिले भर का शासन अपने अपने विभागो में होता है, और वे सब डिप्टी कमिश्नर के अधीन हैं। डिप्टी कमिश्नर जिले के हर प्रकार के शासन और प्रबन्ध का पूरा जिम्मेवार है। एक प्रकार से वह जिले का राजा होता है।

(घ) तहसील, तथा जैल

तहसीलदार—जिले को आगे तहसीलो मे बांटा गया है। तहसील के उच्चाधिकारी को तहसीलदार कहते हैं। डिप्टी कमिश्नर की भांति यह अपनी तहसील का हर प्रकार से जिम्मेवार होता है। उपर्युक्त शासन विभागो के जितने अधिकारी—पटवारी कानूनगो तथा पोलीस आदि—तहसील में रहते हैं, वे सब इसके अधीन होते हैं। इसे द्वितीय श्रेणी के मैजिस्ट्रेट के अधिकार मिले हुए होते हैं, और यह अपनी तहसील में न्याय का काम भी करता है।

इसकी सहायता के लिये एक नायब तहसीलदार भी होता है जिसे तृतीय श्रेणी के मैजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त होते हैं।

जैलदार—तहसील के अन्दर ४०-५० गांवों की एक जैल होती है। इसके उच्चाधिकारी को जैलदार कहते हैं। यह प्रायः ग्रामों के

यह ध्यान रखा जाता है कि यथासम्भव लम्बरदार का पुत्र ही लम्ब दार बने। लम्बरदार का काम ग्राम में शांति रखना और किसानो लगान जमा करना है। ग्राम के किसी जागीरदार, मुआफीदार पैंशनर की मृत्यु (या ग्राम से १ वर्ष तक की अनुपस्थित्ति) हो ज तो उसकी सूचना देना भी लम्बरदार का काम है। महकमा माल अफसरो को फसल के जाचने के काम में और पोलीस के अधिक रियो को किसी अपराधी के ढूढने मे भी वह सहायता देता है। वह एक ओर ग्रामवासियो का सरकार के प्रति प्रतिनिधि है और सरकार की तरफ से ग्राम में सरकारी कार्यकर्ता है।

लम्बरदार डिप्टी कमिश्नर की अनुमति के बिना त्याग-पत्र नही दे सकता। अपने कर्तव्य में प्रमाद करने, या अत्यधिक ऋणी होने, या अपनी भूमि गिरवी रखने, या किसी अपराध में एक साल की कैद भुगतने आदि कारणों से डिप्टी कमिश्नर इसे पदच्युत कर सकता है।

चौकीदार—लम्बरदार की सहायता के लिये ग्राम का दूसरा अधिकारी चौकीदार है। यह प्रायः ५०-२०० घरो पर एक नियुक्त किया जाता है। इसकी नियुक्ति करता तो लम्बरदार है, पर वह होनी है डिप्टी कमिश्नर की स्वीकृति से। ग्राम मे यदि घर अधिक हो तो एक से अधिक चौकीदार रखे जाते हैं। जहां ५ से अधिक चौकीदार हो, वहां उन में से एक को मुख्य चौकीदार बना दिया जाता है। इसे 'दफेदार' कहते हैं।

चौकीदार को एक गाढ़े नीले रंग की वर्दी और लाल पगड़ी होती है। एक बरछी और तलवार इसके शस्त्र हैं। लम्बरदार की आज्ञा का पालन करना इसका प्रधान कर्तव्य है। ग्राम की रखवाली

पटवारी के जिम्मे होता है। ग्राम की पंचायतों, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, आ
लैजिस्लेटिव असैंबली आदि के निर्वाचक-वर्ग की सूची भी यही
करता है। पटवारी को एक डायरी भी रखनी पड़ती है जिसमें
हलके की फसल, फसल की हानि, सरकारी अफसरों का उस के
में आगमन, महकमा माल के अफसरों की आज्ञाएं, किसी दा...
किसी भूमि के सम्बन्ध के फैसले आदि २ बातें लिखनी पड़ती हैं
माल अफसर के आने पर वह डायरी उसे जांच के लिये पेश कर
होती है।

यह है संक्षेप में भारतीय-शासन की रूप रेखा। यहां लम्बरदार
वायसराय तक सब सरकारी अफसर हैं और अपने २ काम के लिये
जिम्मेवार हैं। एक से एक ऊपर है और एक पर दूसरा निरीक्षण करने
वाला है। वायसराय भारत मंत्री के निरीक्षण में काम करता है। भारत
मंत्री ब्रिटिश कैबिनेट् के प्रति उत्तरदायी है। ब्रिटिश कैबिनेट् ब्रिटिश
पार्लियामेंट के प्रति जिम्मेवार है और ब्रिटिश पार्लियामेंट इंगलिस्तान
के लोगों के प्रति उत्तरदायी है। इसलिये कहते हैं कि भारत पर
'अंग्रेजों' का राज्य है।

स्थानीय स्वराज्य

स्थानीय स्वराज्य का अर्थ है—"अपने स्थान या इलाके में स्थानीय
लोगों के द्वारा, स्थानीय समस्याओं का प्रबन्ध"। पिछले अध्याय में
जिन अधिकारियों का वर्णन दिया गया है, वे शासन सम्बन्धी कार्य
करते हैं। अपने २ इलाके की स्थानीय समस्याओं का निरीक्षण और
प्रबन्ध उसी इलाके के लोग अधिक सुगमता और सुन्दरता से कर
सकते हैं। इस लिये शासन-विधान ने यह महकमा अलग कर दिया
गया है और इसका काम प्रांतीय मंत्रिमण्डल के एक मंत्री के सिपुर्द

(क) ग्राम-विभाग

ग्राम्य पंचायत—भारतीय ग्रामो में पंचायतो की प्रथा बहुत पुरानी है। ग्राम के बड़े २ मान्य वृद्ध मिलकर ग्राम-सम्बन्धी सभी झगड़ो का निपटारा स्वयं कर लिया करते थे। भूमि की सीमा, या सिंचाई, कुएं, पशुओ के लिये पानी का प्रबन्ध आदि २ ग्राम्य-समस्याओ के अतिरिक्त धार्मिक आचार सम्बन्धी तथा राजनैतिक अपराधो का फैसला भी वे पचायत द्वारा ही कर लिया करते थे। पचायत मे बैठ कर एक पंच अपने आपको 'धर्मराज' की गद्दी या 'विक्रम के सिंहासन' पर बैठा हुआ समझता था। इस समय वह व्यक्तिगत राग-द्वेष के भावो से निर्मुक्त हो कर शुद्ध सत्य और निष्पक्ष न्याय करता था। इसी से ग्राम वालो पर पंचों का प्रभाव था और वे पंचायत के निर्णय को राजाज्ञा से भी बढ़ कर मानते थे। पंचायत के फैसले की कभी अपील न होती थी।

पर ग्राम के पंचों में 'सत्य' और 'न्याय' का वह पुराना आदर्श जाता रहा। यदि किसी ग्राम-निवासी को पच के साथ किसी बात में अनबन हो गई, तो पच उसकी कसर निकालने के लिये अपने अधिकार का दुरुपयोग करने लगा। इस मे पंचों के फैसले की आस्था भी जाती रही और ग्रामीणो को सरकारी न्यायालयो की शरण लेनी पड़ी। इस प्रकार पुरानी पचायतों का शनैः २ ह्रास होने लगा। और वे लुप्तप्राय हो गईं। सन् १९१२ में सरकार की ओर से तहसील-पंचायतो की आयोजना की गई, पर वह भी सफल न हुई। पुनः १९२२ में 'पंजाब पचायत ऐक्ट' पास हुआ, जिसके अनुसार पुरानी पंचायत-प्रथा को फिर नये रूप में उज्जीवित किया गया।

और कुछ दण्ड आदि से प्राप्ति होती है। अभी पंजाब के प्रत्येक ग्राम में पंचायतों की स्थापना नहीं हुई। पर अब यह काम बड़ी शीघ्रता से हो रहा है। कहीं २ २-३ ग्रामों को मिला कर एक पंचायत बना गई है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड—पहले इनके सदस्य सरकार की ओर नियुक्त हुआ करते थे, पर अब इनमें लगभग $\frac{2}{3}$ निर्वाचित होते हैं और शेष में से कुछ सरकारी अफसर और कुछ गैरसरकारी सदस्य 'डिप्टी कमिश्नर' की सिफारिश से प्रान्तीय सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं। जिला बोर्डों का निर्वाचन 'सम्मिलित प्रणाली' से होता है। अर्थात् हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि सब मिल कर योग्य व्यक्तियों को चुनते हैं।

जिले में सड़कों तथा पुलों का बनाना, उनकी देख भाल और मुरम्मत कराना, रोगी-चिकित्सा के लिये औषधालय और आतुरालय खोलना, सङ्क्रामक रोगों से जिले की रक्षा के लिये हैज़े आदि के टीके लगाने की व्यवस्था करना, एक हैल्थ डिपार्टमैंट को चलाना, स्कूल और सराय आदि बनाना, शुद्ध पेय जल का प्रबन्ध करना, पेय जल के कूपों, बावलियों तथा अन्य जल-स्रोतों को सुरक्षित रखना वृक्ष लगवाना नदियों पर घाट बनाना, तथा नौका घाट स्थापित करना आदि आदि जिला बोर्डों के प्रधान कर्तव्य हैं।

जिला बोर्डों पर सरकारी नियंत्रण भी पर्याप्त है। ये बोर्ड अपना बजट तो स्वयं तैयार करते हैं पर उसमें सरकार की स्वीकृति आवश्यक है। इनके हिसाब-किताब की पड़ताल समय २ पर सरकार की ओर से कराई जाती है। यद्यपि विधान में नहीं, पर व्यवहार में प्रायः पंजाब के सभी जिला बोर्डों का प्रधान जिले का डिप्टी कमिश्नर

परिशिष्ट (क)

वैज्ञानिक आविष्कार

जैसे एक नागरिक पग पग पर समाज और राज्य के संपर्क में आता है, वैसे ही वैज्ञानिक आविष्कारों से भी उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। वैज्ञानिक आविष्कार, आधुनिक युग में हमारे जीवन का एक आवश्यक अङ्ग सा बन गये हैं। आज बाइसिकल, मोटर, रेल, तार, टेलीफोन, रेडियो, बिजली, छापाखाना, फोटोग्राफी, सिनेमा आदि हमारे दैनिक व्यवहार की वस्तुए बन गई हैं। हमारे खाने का आटा, पहनने के वस्त्र, पढ़ने की पुस्तकें, लिखने की कलम, समय देखने की घड़ी आदि २ सब कुछ आविष्कारों के ही परिणाम हैं। आज का मनुष्य अपनी स्थिति, रक्षा उन्नति, सुख-आराम और वणिज-व्यापार तथा अन्य कारोबार मे इन पर निर्भर है। ये न हो तो हमारे बहुत से काम बन्द हो जाएं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना कठिन हो जाय, वाणिज्य-व्यापार असम्भव हो जाय। न पढ़ने को पुस्तकें मिलें, न अखबारें। न कुछ संसार का पता चले, न कोई नई खबर मिले। मनुष्य का ज्ञान-विज्ञान सब रुक जाय। इनके बिना हमारा जीवन दूभर हो जाय और हमारा सारा सुख आराम समाप्त हो जाय।

इन आविष्कारों के कारण ही सारा विश्व एक 'विशाल परिवार' सा बनता जा रहा है। इन्होने ही मनुष्य को मनुष्य के समीप लाने में—राष्ट्र को राष्ट्र के समीप लाने में—असीम सहायता की है। इनके कारण ही हम एक छोटे से ग्राम में रहते हुए भी संसार भरके संपर्क में

सब बात याद न रहने लगी तो उसने 'लेखनकला' का आविष्कार लिया। इसी प्रकार आवश्यकता के अनुरोध से बनते बनते सब चीजें बनती गईं। यह सिलसिला अभी तक चल रहा है और आज ज्यों ज्यों आवश्यकता पडती जाती है त्यों त्यों नई नई चीजें बन रही हैं।

इन आविष्कारों के करने में मनुष्य की तीन प्रकार की प्रवृत्तियां उपलब्ध होती हैं—सुखप्राप्ति, आत्मरक्षा या शत्रुनाश और ज्ञानलिप्सा। कुछ आविष्कारों को तो मनुष्य ने अपने सुभीते, आराम और सुख-सामग्री के जुटाने के लिये किया है। छापाखाना, तार, रेल, मोटर रेडियो, सिनेमा, टैलीफोन तथा नाना रोगों के प्रतिकार सम्बन्धी आविष्कार इस श्रेणी में आते हैं। इनसे मनुष्य-समाज का अनन्त उपकार हुआ है और ये हमारी जीवन-यात्रा के लिये अत्यन्त उपयोगी बन गये हैं। कुछ आविष्कार मनुष्य ने अपनी रक्षा तथा शत्रुओं के नाश के लिये किये हैं। तोप, बन्दूक, बम, तारपीडो विषैली गैसें, आदि घातक आविष्कार इसी श्रेणी के हैं। सौर जगत् तथा ग्रह-उपग्रह आदि का परिज्ञान, भूमि की गति, प्राणिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र आदि बौद्धिक आविष्कार मनुष्य की 'ज्ञान-लिप्सा' के परिणाम हैं। नीचे हम प्रति-दिन उपयोग में आने वाले कुछ आवश्यक आविष्कारों का साधारण परिचय देते हैं।

मुद्रणकला (छापा खाना)

मुद्रणकला के आविष्कार को आधुनिक सब आविष्कारों की जननी कहना चाहिये। यह इसलिये नहीं कि छापाखाने को देख कर और आविष्कार हुए हैं, अपि तु इसलिये कि छापाखाने के आविष्कार ने मनुष्यों की आविष्कारक बुद्धि को बढ़ाने में असीम सहायता दी है।

इसके बाद सन् १४५५ में गटनवर्ग के एक मित्र स्कूफर नामक बढ़ई ने इसमें और भी उन्नति की। उसने लकड़ी के स्थान में धातु के अक्षरों को ढालने के लिये सांचे बनाये। धातु के अक्षरों से लिखावट बहुत साफ और सुन्दर आती थी। इस प्रकार के मुद्रण से गटनवर्ग ने सब से पहले 'बाइबल' को छापा।

इस सफलता को देख कर विलियम कैक्स्टन नामी अंग्रेज ने जर्मनी में जाकर इस कला को सीखा और लौट कर इंगलिस्तान में एक छापाखाना खोल दिया। तदुपरान्त सारे यूरोप में इसका प्रचार हो गया। सन् १५०० तक यूरोप में कोई देश ऐसा न था जिसमें छापाखाना न खुल गया हो।

अब तो अक्षरों की समस्या के साथ २ 'दबाव' डालने के लिये भी मशीनें तैयार हो गई हैं। छापने की सब से पहली मशीन सन् १८१४ में बनी थी। इसे भी एक जर्मन विद्वान् ने बताया था। यह भाप से चलती थी और एक घण्टे में १००० कागज़ छापती थी। धीरे २ इसमें भी सुधार होता गया। अब तो ऐसी २ मशीनें बन गई हैं जो एक घंटे में तीन लाख कागज तक छाप देती हैं। ये अखबार छापने के साथ ही उन्हें काट कर तह भी करती जाती हैं। इस मशीन का नाम 'टाइप रिवाल्विंग मशीन' है।

भारतवर्ष में छापाखाने का प्रादुर्भाव सत्रहवीं शताब्दी से हुआ है। हिन्दीप्रेमियों को गुजरात के प्रसिद्ध व्यापारी श्री भीमजी पारिख का हृदय से कृतज्ञ होना चाहिये जिन्होंने पहले-पहल सन् १६७० में विलायत से ८००) मासिक पर एक अंग्रेज को बुलवा कर हिन्दी का टाइप बनवाया।

इसके पश्चात् सन् १८२६ में सर गोल्ड्सवर्दी गर्नी नाम के अंग्रेज [सज्ज]न ने एक ऐसी भाप-गाड़ी बनाई जिसमें २१ मनुष्य बैठ सकते [थे] था जिसकी रफ्तार १५ मील प्रति घंटा थी। सन् १८३१ में गर्नी [म]हाशय ने ग्लोसेस्टर और चेल्टनहम के बीच में अपनी गाड़ियां [कि]राये पर चलाईं। कभी २ भाप के फट जाने से यह गाड़ियां फट [जा]ती थी। तब बहुत प्राण-हानि होती थी। इन गाड़ियों की भयङ्करता [के] सम्बन्ध में उस समय यह कविता बनाई गई थी—

गर्नी की है अटपट गाड़ी, भाप है जिसका घोड़ा।
सीधे स्वर्ग पहुँच जाओगे, अगर चढ़ोगे थोड़ा॥ (उद्धृत)

इन्हीं दिनों भाप से चलने वाले 'स्टीम इंजन' बने। इंजन को मशीनों का राजा कहना चाहिये। इसकी सहायता से मनुष्यों के सब काम आसान हो गये हैं। कई प्रकार की कलें और ... कारण से ही चल रहे हैं। इन इञ्जनों में ... और सुधार होते २ रेल का इञ्जन भी बना, ... कर रेल गाड़ी चलाई जाती है। रेल का इञ्जन [किसी एक का] आविष्कार नहीं कहा जा सकता। यह बहुत से ... और प्रयत्न का फल है। तथापि वर्तमान रूप में रेल ... आविष्कार का श्रेय श्री जार्ज स्टीफनसन को दिया जाता है ... जो इञ्जन रेलगाड़ी में प्रयुक्त होते हैं. वे जार्ज स्टीफनसन ... आधार पर ही बनते हैं। स्टीफनसन के इस आविष्कार ... इस प्रकार है:—

जार्ज स्टीफनसन का पिता कोयले की एक खान में ... गरीबी के कारण जार्ज को अनपढ़ रहना पड़ा। कुछ बड़ा होने पर यह भी कोयले की खान में घोड़ों के ड्राइवर के रूप में नौकर हो गया।

उस खान में एक ऐसी कल लगी हुई थी जो भाप के बल से चलती थी और खान का पानी बाहर निकालने के काम में आती थी। जार्ज बड़े ध्यान से उसका निरीक्षण करता था और थोड़े ही समय में उसने उसके पुरजों से परिचय प्राप्त कर लिया। अब उसके दिल में यह जिज्ञासा हुई कि भाप क्या वस्तु है? उसमें इतनी शक्ति कहां से आती है? वह चाहता था कि भाप के सम्बन्ध में लिखी हुई पुस्तकों को पढ़े। पर पढ़ना तो उसे आता ही न था। निदान उसने समीप के मजदूरों के एक स्कूल मे जाकर पढ़ना शुरू कर दिया।

कुछ दिन बाद वह एक दूसरी खान मे नौकर हुआ। वहां एक पुरानी बिगड़ी हुई कल पड़ी थी। जार्ज ने खान के मालिक से कहा कि मैं इसे ठीक कर सकता हूं। मालिक को आश्चर्य तो अवश्य हुआ, पर उसने उसे ठीक करने की अनुमति दे दी। जार्ज ने उसके पुर्जों को ठीकठाक करके उस मशीन को चालू कर दिया। इससे उसका बड़ा नाम हुआ। अब उसे मशीन के काम की ही नौकरी मिल गई। यहीं पर उसने रेल के इंजन का निर्माण किया। खान से कोयले को बाहर ढोने के लिये इसका प्रयोग किया गया। यह लोहे की पटरी पर चलता था और १५०० मन कोयले से भरी हुई गाड़ी को खींच ले जाता था। बस यहीं से रेलगाड़ी का श्रीगणेश हुआ समझना चाहिये। जार्ज की गाड़ी मे पहले पहल ६०० मनुष्य सवार हुए।

इसके बाद रेलगाड़ियो का ऐसा प्रचार हुआ कि उसका अनुमान लगाना भी कठिन है। अब तो संसार का शायद ही कोई प्रदेश हो जहां रेलगाड़ी न चलती हो। अब तो ऐसी गाड़ियां बन गई हैं जो ० मील या इससे भी अधिक प्रतिघंटा की रफतार से चलती हैं। पिछले दिनों एक गाड़ी १२४ मील प्रति घंटा की रफतार से चली थी।

यात्रा की सुविधा, सभ्यता के प्रचार और वणिज व्यापार
रेल का पर्याप्त भाग है।

जहाज़

जैसे स्थल-यात्रा की कठिनाई को रेलो ने दूर किया
जलयात्रा के कष्टो को जहाज ने दूर किया है। प्रारम्भ
सामने नदी नालों को पार करने की समस्या अवश्य उपस्थित
कई पशुओ को जल मे तैरता देखकर मनुष्य ने भी तैरना स
होगा और लकड़ी को जल मे तैरता हुआ देख कर उसके जी
बनाने की चाह भी पैदा हुई होगी। कई बार पानी मे तै
मोटे से ठेले पर बैठ कर मनुष्य ने भी जलयात्रा की होगी।
उसे बीच में खोखला करके एक छोटी सी नाव भी बनाई
इसके पश्चात् बहुत से लट्ठे बांध कर बड़े २ बेडे तैयार हुए। प
लकडी के तखते जोड़ कर नाव बनी फिर उसकी गति-विधि
नियंत्रण करने के लिये डांड और चप्पे बने। तत्पश्चात् पाल ताने गये
और इस प्रकार शनैः २ लकड़ी के जहाज बने।

लकडी के जहाजो का आविष्कार बहुत पुराना है! वैदिक युग में
इनके द्वारा समुद्रयात्रा का वर्णन मिलता है। कहते हैं; मिस्रदेश के
लोग भी बहुत पुराने समय से इनका प्रयोग करते थे। लंदन के ब्रिटिश
म्यूजियम में मिस्र के एक जहाज़ का चित्र पड़ा है, जो ईसापूर्व ६०००
वर्ष पहले बना था। पर लोहे के जहाज आधुनिक काल का ही
आविष्कार है। लोहे का सर्वप्रथम जहाज़ बरतानिया मे सन् १८२१
के लगभग बना।

स्पेन फ्रांस, स्काटलैंड, तथा अमरीका आदि प्रदेशो में एक साथ
ही जहाज़ बनाने का काम होता रहा और कई प्रकार के परीक्षणों के

उस खान में एक ऐसी कल लगी हुई थी जो भाप के बल से चलती थी और खान का पानी बाहर निकालने के काम में आती थी। जार्ज बड़े ध्यान से उसका निरीक्षण करता था और थोड़े ही समय में उसने उसके पुरज़ो से परिचय प्राप्त कर लिया। अब उसके दिल में यह जिज्ञासा हुई कि भाप क्या वस्तु है ? उसमें इतनी शक्ति कहां से आती है ? वह चाहता था कि भाप के सम्बन्ध मे लिखी हुई पुस्तकों को पढ़े। पर पढ़ना तो उसे आता ही न था। निदान उसने समीप के मजदूरो के एक स्कूल में जाकर पढ़ना शुरू कर दिया।

कुछ दिन बाद वह एक दूसरी खान मे नौकर हुआ। वहां एक पुरानी बिगड़ी हुई कल पड़ी थी। जार्ज ने खान के मालिक से कहा कि मैं इसे ठीक कर सकता हूं। मालिक को आश्चर्य तो अवश्य हुआ, पर उसने उसे ठीक करने की अनुमति दे दी। जार्ज ने उसके पुर्ज़ों को ठीकठाक करके उस मशीन को चालू कर दिया। इससे उसका बड़ा नाम हुआ। अब उसे मशीन के काम की ही नौकरी मिल गई। यहीं पर उसने रेल के इंजन का निर्माण किया। खान से कोयले को बाहर ढोने के लिये इसका प्रयोग किया गया। यह लोहे की पटरी पर चलता था और १५०० मन कोयले से भरी हुई गाड़ी को खींच ले जाता था। बस यहीं से रेलगाड़ी का श्रीगणेश हुआ समझना चाहिये। जार्ज की गाड़ी में पहले पहल ६०० मनुष्य सवार हुए।

इसके बाद रेलगाड़ियो का ऐसा प्रचार हुआ कि उसका अनुमान लगाना भी कठिन है। अब तो ससार का शायद ही कोई प्रदेश हो जहां रेलगाड़ी न चलती हो। अब तो ऐसी गाड़ियां बन गई हैं जो ०० मील या इससे भी अधिक प्रतिघंटा की रफतार से चलती हैं। पिछले दिनो एक गाड़ी १२४ मील प्रति घंटा की रफतार से चली थी।

यात्रा की सुविधा सभ्यता के प्रचार और वणिज व्यापार की रेल का पर्याप्त भाग है।

जहाज़

जैसे स्थल-यात्रा की कठिनाई को रेलो ने दूर किया है, वैसे ही जलयात्रा के कष्टो को जहाज ने दूर किया है। प्रारम्भ में मनुष्य के सामने नदी नालो को पार करने की समस्या अवश्य उपस्थित हुई होगी। कई पशुओ को जल मे तैरता देखकर मनुष्य ने भी तैरना सीख लिया होगा और लकड़ी को जल मे तैरता हुआ देख कर उसके जी मे 'नाव' बनाने की चाह भी पैदा हुई होगी। कई वार पानी में तैरते हुए मोटे से ठेले पर बैठ कर मनुष्य ने भी जलयात्रा की होगी। बाद में उसे बीच में खोखला करके एक छोटी सी नाव भी बनाई होगी। इसके पश्चात् बहुत से लट्ठे बांध कर बड़े २ बेडे तैयार हुए। धीरे २ लकडी के तखते जोड कर नाव बनी फिर उसकी गति-विधि पर नियंत्रण करने के लिये डांड और चप्पे बने। तत्पश्चात् पाल ताने गये। और इस प्रकार शनैः २ लकड़ी के जहाज बने।

लकडी के जहाजो का आविष्कार बहुत पुराना है! वैदिक युग में इनके द्वारा समुद्रयात्रा का वर्णन मिलता है। कहते हैं; मिस्रदेश के लोग भी बहुत पुराने समय से इनका प्रयोग करते थे। लदन के ब्रिटिश म्यूजियम मे मिस्र के एक जहाज़ का चित्र पडा है, जो ईसापूर्व ६००० वर्ष पहले बना था। पर लोहे के जहाज आधुनिक काल का ही आविष्कार है। लोहे का सर्वप्रथम जहाज़ बरतानिया मे सन् १८२१ के लगभग बना।

स्पेन, फ्रांस, स्काटलैंड, तथा अमरीका आदि प्रदेशों में एक साथ ही जहाज़ बनाने का काम होता रहा और कई प्रकार के परीक्षणो के

बाद उन्हें वह सफलता मिली जो आज सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। आजकल के जहाज़ चार्लस पार्सन्स' के निकाले हुए तरीके पर बनते हैं। पहले समुद्र की चट्टानो से टकरा कर जहाज़ के डूबने का बड़ा भय रहता था पर अब वह डर दूर हो गया है। समुद्र में जहां जहां चट्टाने हैं, वहां ऊँचे-मीनार खड़े कर दिये हैं। इन्हें लाइटहौस कहते हैं। इन्हे देख कर जहाज़ चट्टानों के पास नहीं आते।

जहाज़ो की यात्रा अब बहुत सुखप्रद यात्रा हो गई है। सोने, सैर करने आदि का उनमें पूरा प्रबन्ध होता है। जहाज़ में रेडियो, होटल दुकानें, खेलने के मैदान आदि सभी सुविधाएं होती हैं। अब एक हज़ार फुट लम्बे जहाज भी बनने लगे हैं जिनमें ३००० मनुष्य बड़े सुख से यात्रा कर सकते हैं।

यात्रा और व्यापार की सुविधा के अतिरिक्त जहाज़ युद्ध के लिये भी अत्युपयुक्त हैं। जहाज़ो मे हज़ारो सैनिक बैठे रहते हैं। खाने-पीने का सब सामान उनके पास रहता है। चारो ओर बड़ी बड़ी तोपें लगी होती हैं जिनसे शत्रु पर आक्रमण किया जा सकता है। ऐसे जहाज़ों को लडाकू जहाज़ कहते हैं। ये लड़ाकू जहाज़ एक प्रकार के पानी में तैरने वाले किले ही हैं। जहाज़ो के कारण ही समुद्र पार के देशो का—विशेषतः अमरीका आदि का ज्ञान हो सका है। इनके कारण ही सारा ससार व्यापार और सभ्यता के एक सूत्र मे बंधता जा रहा है।

हवाई जहाज़

जैसे पशुओ को पानी में तैरते हुए देख कर मनुष्य ने तैरना सीखा, वैसे ही पक्षियो को वायु में उड़ते हुए देख कर मनुष्य को भी उड़ने की लालसा पैदा हुई होगी, पर अभी तक मनुष्य उस इच्छा को पूर्ण नहीं कर सका है। हां, यन्त्रो की सहायता से आकाशयात्रा में

उसने सफलता प्राप्त कर ली है। पुराने समय में भी वायुयानों का ..
मिलता है। कहते हैं श्रीरामचन्द्र जी लङ्का से अयोध्या तक पु..
विमान पर बैठ कर आए थे। कालिदास ने राजा दुष्यन्त का ..
की सहायता के लिये एक आकाशचारी यान में बैठ कर यात्रा करने
का वर्णन किया है। माघ कवि ने नारद का आकाश-मार्ग से आना
लिखा है पहले इन बातों पर लोग विश्वास नहीं करते थे पर अब तो
ये हमारी आंखों के सामने आ रही हैं।

आजकल ब्याह-शादी के समय छोटे २ गुब्बारों में एक बत्ती जला
कर उन्हें आकाश में उड़ा देते हैं। सब ने देखा होगा कि ये गुब्बारे
वायु में दूर तक उड़ते फिरते हैं। इसका कारण यह है कि दीपक की
गरमी से गुब्बारे के भीतर की वायु हलकी हो जाती है और वह ऊपर
को उठती है। अपने वेग से वह गुब्बारे को भी ले उड़ती है। बस यही
नियम हवाई जहाजों के निर्माण में काम करता है। ऊपर को वही
वस्तु उड़ सकती है जो वायु से हलकी होगी।

सन् १७७६ ई० में ब्लैक महाशय ने इस बात का पता चलाया कि
हाइड्रोजन नाम की गैस वायु से हलकी होती है। आजकल बाजारों में
हाइड्रोजन गैस से भरे हुए फलूस या बैलून मिलते हैं। बच्चे इन्हें
लेकर बहुत प्रसन्न होते हैं। उन्हें धागे से बांध कर वे खूब उड़ाते हैं।
इसी आधार पर चमड़े के बैलून बना कर उनमें हाइड्रोजन भर कर
उनकी सहायता से लोग आकाश की सैर किया करते थे। पर इनमें एक
बड़ा दोष यह था कि वायु के अनुसार उड़ते थे। वायु जिधर चाहती,
उन्हें उड़ा ले जाती थी। कभी कभी उड़ने वाले पहाड़ों, चोटों या
नदियों तथा समुद्र में भी गिर पड़ते थे। मनुष्य का इनकी गति पर

कोई नियन्त्रण न था, न मनुष्य इनके द्वारा किसी अभिलाषित स्थान पर पहुँच सकता था।

इस त्रुटि को पूर्ण करने के लिये जर्मनी के 'काउंट जैपलिन' महाशय ने इन वैलूनों में एक विशेष सुधार किया। उसने इन गुब्बारों के नीचे एक ऐसा यंत्र लगाया जिसकी सहायता से इनको मनमाने ढंग से घुमाया-फिराया जा सकता था। जैपलिन ने अपने वैलून का ऊपरी भाग पतले टीन (एलमीनियम) का बनाया। उसमें गैस से भरे हुए कई गुब्बारे रखे, जिससे एकाध के फटने पर भी वह नीचे न आ गिरे। निचले हिस्से में गति का नियत्रण करने के लिये एक छोटा सा यन्त्र लगा दिया। यह आविष्कर्ता के नाम पर 'जैपलिन' नाम से प्रसिद्ध हुआ इस पर ४० के लगभग मनुष्य वैठ सकते हैं।

जैपलिन से यद्यपि मनुष्य मनचाहे स्थान पर जा सकता था, तथापि इसकी गति बहुत मन्द थी। दूसरे इसके फट जाने का बड़ा डर रहता था। वैज्ञानिक इसमे और सुधार करने में तत्पर रहे। वे चाहते थे कि हाइड्रोजन गैस के बिना ऐसा वायुयान बने जो यंत्रों की सहायता से उड़ता फिरे। इस उद्योग में बीसियों वैज्ञानिकों के प्राणों की आहुति हुई। कई परीक्षण किये गये जिनमे कई सफल और कई असफल रहे। पर वैज्ञानिकों ने निरन्तर परिश्रम जारी रखा।

अन्त मे ओरविल राइट और विलबर राइट के नाम के दो भाइयों ने इसमे सफलता प्राप्त की। सन् १९०५ में ये दोनों २४ मील तक उड़ने में समर्थ हुए। १९०८ में इन्होंने एक ऐसा वायुयान बनाया जिसमें इन्होंने स्वय ५६ मील की यात्रा की!

अब तो हवाई जहाजों मे और भी सुधार हो गये हैं और अभी और सुधार होने की आशा है। आजकल ऐसे हवाई जहाज भी बन

गये हैं जिनके नीचे नावें लगी रहती हैं। नावो के कारण ये किसी चौड़ी नदी या समुद्र में उतर सकते हैं और वहीं से फिर उड़ . है। वायुयानो की रफतार मे भी अब पर्याप्त वृद्धि हो गई है ४०० मील प्रति घटा की रफतारवाले वायुयान भी वन चुके हैं।

एक और प्रकार के वायुयानो के निर्माण के परीक्षण हो रहे हैं। इन्हें रौकेट् शिप् कहते हैं। साधारण वायुयान को ऊपर उड़ने मे बहुत देर लगती है। रौकेट् शिप् आतिशबाजी के समान सीधा उड़ा करेंगे। यदि ये परीक्षण सफल हो गये तो बम्बई से लंदन पहुँचने मे केवल दो घण्टे लगा करेंगे।

यात्रा और डाक के ले जाने के अतिरिक्त हवाई जहाजो का अधिकतर प्रयोग युद्ध के लिये किया जा रहा है। लड़ाई मे चार प्रकार के वायुयान काम में आते हैं। कुछ तो बम गिराते हैं। इन्हें 'ब..' कहते हैं। कुछ लड़ाई करते हैं इन्हें 'फाइटर' कहते हैं। इनमें तोपें लगी रहती हैं। कुछ शत्रु की गति-विधि का पता लाते हैं। इ. फोटो लेने के यत्र लगे होते हैं जिनसे शत्रु की सेना के पूरे चित्र . जाते हैं। चौथे सेना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं।

शब्द-सम्बन्धी आविष्कार

तार—सन् १७५३ ई० मे स्काटलैंड के एक वैज्ञानिक ने एक लेख में यह सिद्ध किया कि बिजली की सहायता से शब्द को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जा सकता है। इस लेख से कई वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और वे इस कार्य में जुट गये।

बाद में इंगलिस्तान के सर फ्रांसिस रोनाल्ड ने इस विषय के बहुत परीक्षण करके शब्द को धातु की तार के द्वारा ८ मील तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की। फिर सर चार्ल्सह्विटसन् और विलियम

कुक की सहायता से रोनाल्ड ने तार के आविष्कार को पूर्ण किया। लंदन में सब से पहला तार सन् १८३८ ई० में लगा।

पर आजकल जिस पद्धति से तार द्वारा खबरें भेजी जाती हैं उसके आविष्कार का श्रेय अमरीका के मोर्स महाशय को है। उसने सन् १८३७ में अमेरिका तार के आविष्कार की रजिस्टरी कराई थी। अमरीका में सर्वप्रथम तार सन् १८४४ में लगा। इसके पश्चात् सर्वत्र मोर्स की रीति से ही तारों का प्रचार हो गया। अब तो सारे देशों में इसका प्रचार है। इसके द्वारा क्षणों में समाचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जा सकता है। अखबारों का तो यह प्राणभूत है।

इसमें अक्षरों की ध्वनियां के इङ्गित नियत किये गये हैं। जैसे 'अ' के लिये गरगट्ट, 'ब' के लिये 'गट्ट गरगर', 'स' के लिये गट्टगर गट्टगर इत्यादि। इन्हीं ध्वनियों के सहारे लिखने वाला इनको लिखता जाता है।

टैलीफ़ान—टैलीफोन का आविष्कार तार से भी अधिक महत्व का है। इसमें तार के समान ध्वनियों के इंगित नहीं होते, अपितु इस के द्वारा हम अपने मित्र के साथ अपनी भाषा में वार्तालाप कर सकते हैं। टैलीफोन पर बात करने के लिये कुछ सीखने-समझने की आवश्यकता नहीं। टैलीफोन में दो चोंगे होते हैं। एक को कान से लगा कर दूसरा मुख के सामने रखा जाता है। बस एक समय में ही हम अपने मित्र की बात सुनते भी हैं और अपनी उससे कहते भी हैं।

टैलीफोन का आविष्कार अलैग्जैण्डर ग्राहम बेल महाशय ने किया था। इस आविष्कार की कथा बड़ी विचित्र है। ग्राहम का एक मित्र था। उसका नाम था वाटसन। दोनों मित्र अलग २ घरों में

रहते थे। दोनो ने अपने घरो मे तार लगवाए हुए थे। फुरसत के समय वे दोनो आपस में तार के द्वारा संकेत किया करते थे। एक बार वाटसन के स्प्रिंग में कुछ गड़बड़ी हो गई। बहुत यत्न करने पर भी उसके समझ मे कुछ न आया। उसे स्प्रिंग पर बड़ा गुस्सा आया। एक हथौड़ा लेकर वह स्प्रिंग पर दनादन चोट करने लगा। इधर ग्राहम को अपने कमरे मे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई उसके स्प्रिंग पर हथौड़ा मार रहा है। झट अन्दर जा कर देखा तो वहां कुछ नहीं था। हां, हथौड़े का शब्द साफ सुनाई दे रहा था। वहां से वह झट वाटसन के घर मे गया। वहां देखा कि वाटसन हथौड़े से स्प्रिंग को पीट रहा था। बस ग्राहम को सारी बात समझ में आ गई। जब हथौड़े की चोट तार द्वारा पहुंच सकती है तो मनुष्य की बोली भी पहुंचनी चाहिये। इससे दोनो मित्र टैलीफोन के आविष्कार में लग गये।

जिस दिन ग्राहम अमरीका के पेटेंट आफिस मे अपने आविष्कार को रजिस्ट्री कराने के लिये गया, उसी दिन उससे कुछ ही मिनट बाद 'ग्रे' नामक एक और व्यक्ति भी वहां पहुंचा, उसने भी टैलीफोन का आविष्कार किया था और वह भी रजिस्ट्री कराने ही गया था। पर चूंकि ग्राहम पहले पहुंचा था इसलिये ग्राहम ही टैलीफोन का आविष्कारक माना गया।

बेतार का तार और रेडियो—तार और टैलीफोन में एक बड़ा झंझट है। उनके लिये तारों और खम्भों की आवश्यकता पड़ती है। जहां खम्भे नहीं, वहां तार और टैलीफोन काम नहीं दे सकते। यह कठिनाई समुद्र पर चलने वाले जहाजों को सब से अधिक अनुभव होती थी। जब भी कोई जहाज़ डूबने लगता था या डूब जाता था तो उसकी सूचना किसी को न दी जा सकती थी। लाखों मनुष्यों के प्राण

विना सूचना और विना सहायता के ही चले जाते थे। इस कठिनाई को दूर करने के लिये ही बेतार के तार का आविष्कार हुआ।

इसका श्रेय इटली के मार्किन नामक वैज्ञानिक को है। उसने १६०७ में यह आविष्कार किया था। गौरव की बात है कि मार्किन से बहुत पहले भारतीय विद्वान् सर जगदीशचन्द्र बोस ने यह परिज्ञान प्राप्त कर लिया था, पर संसार मे नाम 'पहले बनाने वाले का नहीं होता, पहले प्रकाशित करने वाले का होता है।' मार्किन ने इसे पहले प्रकाशित कर दिया। इससे वही अब इसका आविष्कारक माना जाता है।

बेतार के तार भेजने का सिद्धान्त यह है। वायु में ईथर नाम का एक पदार्थ है जो वायु से भी अधिक पतला है। जिस प्रकार पानी के तालाब मे ढेला फैंकने से छोटी छोटी तरङ्गें उठ कर चारो ओर फैलती जाती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक शब्द जो हम बोलते हैं, वायु में प्रकम्पन पैदा कर देता है और ईथर की तरङ्गें भी चारो ओर फैलती चली जाती हैं। ये तरङ्गें जब हमारे कान से टकराती है तो, वह शब्द हमे सुनाई देता है। यदि किसी यन्त्र की सहायता से शब्द को अधिक ऊँचा कर दिया जाय और तरङ्गो को ग्रहण करने के लिये साधारण कान से अधिक बलशाली यंत्र रखा जाय तो ये तरंगे सारे संसार में सुनी जा सकती हैं*। बस यही सिद्धान्त बेतार की तार का रहस्य है। १६०३ मे रेडियम के अविष्कार से शब्द की तरङ्गो को बढ़ाने में असीम सहायता मिलती है। इसी के नाम पर अब रेडियो प्रचलित हुए हैं।

बेतार की तार के लिये ऊंचे २ खभे लगाने पडते हैं। इनके द्वारा

---

* भारत के प्राचीन ऋषियों को शब्द की इस व्यापनशील शक्ति का पता था। गौतम ने इसे 'शब्दसन्तान' कहा है। यास्क ने भी शब्द को 'व्यासिमान्' कहा है।

ब्द ईथर में फैलाए जाते हैं और सुने जाते हैं। दिल्ली, लाहौर कलकत्ता, द्रास, कराची, इलाहाबाद आदि भारत के बड़े २ नगरो में ये वेतार ी तार के खम्भे लगे हुए हैं।

रेडियो में यह झंझट भी छूट गया है। अब तो एक छोटे से यंत्र की ाहायता से ही यह काम चल जाता है। प्रत्येक आदमी अपने घर में डियो लगवा सकता है। एक एक घर में दो रेडियो भी मिलते हैं। स प्रकार के रेडियो भी बन गये हैं जिन्हें ऐनक की तरह कान पर गा कर एक ही व्यक्ति सब कुछ सुन सकता है।

टैलिविजन—रेडियो के द्वारा तो शब्द ही सुनाई देते हैं, अब तो (१९२५ से) ऐसे यन्त्र भी बन गए हैं जिनसे शब्द के साथ ही बोलने के साक्षात् दर्शन भी होने लगे हैं। इन्हें टैलिविजन कहते हैं। इसकी सहायता से एक स्थान पर होने वाला नाटक संसार भर मे दिखाया जा सकेगा। उसके दृश्य और गाने सभी एक समय में देख और सुन सकेंगे। भारत में अभी इसका प्रचार कम है।

———

परिशिष्ट (ख)

साधारण परिज्ञान

कुछ ज्ञातव्य बातें

संसार मे सब से बड़े, सब से लम्बे और सब से ऊंचे पदार्थ—

सब से ऊचा पर्वत	हिमालय की एवरेस्ट (गौरीशङ्कर) चोटी (२६००२ फुट ऊंची)
सब से लम्बी नदी	अमेजन (अमरीका) ४००० मील)
,, बड़ी झील	कैस्पियन समुद्र (१७०००० वर्ग मील)
,, बड़ा पुस्तकालय	बिबिलिओथेक नेशनेल (पैरिस)
,, ,, मरुस्थल	सहरा (अफरीका)
,, ऊंची इमारत	अंपायर स्टेट बिल्डिङ्ग (अमरीका) १२५० फुट ऊंची
सब से बडा जहाज	नारमंडी (८२७९९ टन)
,, ,, नगर	लंदन (८७४७१४२ जनसंख्या)
,, ऊंची प्रतिमा (बुत)	स्वतंत्रता की प्रतिमा (न्यूयार्क) १५१ फुट ऊंची
,, गहरा समुद्र	प्रशान्त महासागर (३५४१० फुट गहरा)
सब से लम्बा रेलवे स्टेशन	सोनपुर (बिहार)
,, बड़ा अजायबघर	ब्रिटिश म्यूज़ियम (लंदन)
,, ,, महाद्वीप	एशिया
,, लम्बी दीवार	चीन की दीवार (१००० मील लम्बी २१४ ई० पू० में निर्मित)
सब से लम्बी नहर	स्टालिनस् श्वेत सीबाल्टिक (१५२ मील)
,, ,, रेल की सुरंग	सिपलन (स्विट्ज़रलैंड) १२ मील ४५८ गज़ लम्बी)

सब से बड़ी घण्टी	मास्को की घंटी सन् १७३३ में निर्मित २१ फुट ऊची २१ फुट का घेरा और २०० टन भारी)

संसार के कुछ प्रसिद्ध आविष्कारक

कोल्ट (अमरीका)	रिवोल्वर (१८३५)
एडीसन ,,	चलचित्र (फिल्म) (१८६३)
राइट बन्धु ,,	एरोप्लेन (१९०३)
वाट् (इंगलिस्तान)	स्टीम इंजन (१५६६)
थिमोनियर (फ्रांस)	सिलाई की मशीन (१८३०)
मार्कोनी (इटली)	बेतार की तार (१८६६)
मैडम करी (फ्रांस)	रेडियम (१९०३)
आई. एल. बेर्ड (इंगलिस्तान)	टैलिविजन (१९२५)
स्टीफनसन (इंगलिस्तान)	रेल का इंजन (१८८५)
रोएंट्जन (जर्मनी)	एक्स रे (१८६५)
वान लेवन हुक	बैक्टीरिया (१८६०)
मेट्गंथलर (अमरीका)	लिनो टाइप (१८८५)
लार्ड लिस्टर (इंगलिस्तान)	ऐंटीसैप्टिक सर्जरी (१८६७)
लेवरन (जर्मनी)	मलेरिया के कीटाणु (१८८०)
डा० जेनर (जर्मनी)	चेचक का टीका (१८६५)
फहरनहीट	पारे का थर्मामीटर (१७२१)
गलेलिओ	दूरबीन
वाटरमैन (अमरीका)	कलम (फाउटेन पैन) (१८६४)
शोलीस्	टाइपराइटर (१८७३)
जिलेट (अमरीका)	सेफ्टी रेजर (हजामत का
स्विंटन	टैंक (फौजी घातक यान)
गार्टलिंग	मशीनगन (१८६१)
रे नेक (फ्रांस)	स्टेथोस्कोप (१८१६)

कुछ पशुओं की आयु का मान

बिल्ली	१०–१५ वर्ष	चूहा	२–३ वर्ष
कुत्ता	१०–१५ ,,	उल्लू	६–८ ,,
हाथी	४०–८० ,,	तोता	२०–२५ ,,
लूमड़	१०–१२ ,,	भेड़	१०–१५ ,,
बकरी	१२–१५ ,,		
हंस	२५–५० ,,	चीता	१५–२० ,,
घोड़ा	१५–३५ ,,	कछुआ	१५० ,,
शेर	१२–२५ ,,	बाघ	१०–१५ ,,

छोटी संख्या साधारण आयु प्रगट करती हैं और बड़ी संख्या उनकी परमायु बताती हैं। वैज्ञानिकों का विचार है कि किसी पशु की इससे अधिक आयु का कथन कोरी गप्प है।

ब्रिटिश पार्लियामेंट में भारतीय

सर मनचर जी भाउनगरी	स० सकलतवाला
दादा भाई नौरो जी	लार्ड सिन्हा

प्रिवि कौंसिल में भारतीय

राइट आनरेबल अमीर अली	रा. आ. सर डी. एफ. मुल्ला (१९३०
लार्ड सिन्हा	,, सर शादीलाल (१९३४)
सर बी. सी. मित्र	,, एच. एच. आगा खां (१९३४)
रा. आ., वी. एस. श्रीनिवास शास्त्री (१९२१)	सर तेजबहादुर सप्रू (१९३४)
	सर अकबर हैदरी (१९३६)

भारत के प्रसिद्ध नगरों की जनसंख्या (१९३१ के अनुसार)

कलकत्ता (हौड़ा सहित)	१४८५५८२	अमृतसर	२६४८४
बंबई	११६१३८३	लखनऊ	२७४६५
कराची	२६३५६५	आगरा	२२९७६
नागपुर	२१५१६५	प्रयाग	१८३९१
देहली	४४७४४२	बनारस	२०५३१
मद्रास	६४७२३८	पूना	२५०१८
लाहौर	४२९७४७	कानपुर	२४३७५
अहमदाबाद	३१३७८९		

भारत के प्रान्तों की जनसंख्या (१९३१ के अनुसार)

प्रान्त	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या
मद्रास	१४२२७७	४६७४०१०७
बंबई	१२३६७९	२१९३०६०१
बंगाल	७७५२१	५०११४००१
यू. पी.	१०६२४८	४८४०८७६३
पंजाब	९९२००	२३५८०८५२
बिहार	८३०५४	३७६७७५७६
सी. पी.	९९९२०	१५५०७७२३
आसाम	५५०१४	८६२२२५१
सीमाप्रान्त	१३५१८	२४२५०७६
बलोचिस्तान	५४२२८	४६३५०८
अजमेर	२७११	५६०२९२
कुरग	१५९३	१६३३२७
देहली	५७३	६३६२४६
अण्डेमन-निकोबार	३१४३	२९४६३

भारत के प्रसिद्ध धर्मों की जनसंख्या (१९३१ के अनुसार)

हिन्दू	२३९१९५००	बौद्ध	१२७८७०००
मुसलमान	७७६७८०००	पारसी	११००००
सिक्ख	४३३६०००	ईसाई	६२९७०००
जैन	१२५२०००		

भारतीय-प्रसिद्ध भाषाओं की जनसंख्या (१९३१ के अनुसार)

हिन्दी	७९४१४७७४	सिन्धी	४००६१४७
बंगाली	५३४६८४९९	गुजराती	१०८४९९८४
मराठी	२०८९०६५८	पंजाबी	१५८३९२५४
आसामी	१९९९७५७	पश्चिमी पंजाबी	८५६६०५१
तामिल	२०४१२६५२	राजस्थानी	१३८९७८१६
तेलगू	२६३७३७२७	उड़िया	१११९
मलयालम	९१३७६१५		

भारत-सम्बन्धी कुछ अद्भुत बातें—

भारत की जनसंख्या संसार की जनसंख्या का पांचवा भाग है।

जनसंख्या के अनुसार बंगाल सब से बड़ा प्रान्त है (५०११४००२)

मध्यप्रदेश मृत्युसंख्या में सब से बड़ा है। (३३-५)

आसाम में सब से कम मृत्युसंख्या है। (२३-८)

मद्रास में स्त्रियां सब प्रान्तों से अधिक है। (१००० पुरुषों के प्रति १०२९ स्त्रियां हैं)।

पंजाब में स्त्रियां सब प्रान्तों से कम हैं। (१००० पुरुषों के प्रति ८३ स्त्रियां है)।

विधवाओं की संख्या सब से अधिक बंगाल में है। (१००० स्त्रियों में २२६ विधवा हैं)

अजमेर में अन्धों की संख्या सब से अधिक है। (३८३ प्रति लाख)।

जैकबाबाद में सब से अधिक (१२५°) गरमी पड़ती है।

चिरापूंजी में सब से अधिक वर्षा होती है (४६० इञ्च)

भारत में केवल १० प्रतिशत के लगभग लोग शहरों में रहते हैं। ९० प्रतिशत ग्रामनिवासी हैं।

भारत में प्रति १००० पुरुषों के ९४० स्त्रियां हैं।

भारत की जन्म और मृत्यु संख्या का अनुपात संसार भर में सब से अधिक है।

संसार भर में अनपढ़ों की संख्या का ½ भाग केवल भारत में पाया जाता है।

भारत में कठिनता से ८ प्रतिशत लोग शिक्षित हैं।

१९२१ से १९३१ तक भारत में शिक्षा में केवल १ प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

ससार के प्रसिद्ध देशो की सब से बड़ी व्यवस्थापिका सभाओ के नाम (पार्लियामैण्ट)

इंगलिस्तान	पार्लियामैंट	पोलैण्ड	सेज्म
अमरीका	कांग्रेस	पर्शिया	मजलिस
जापान	डाइट	स्विटज़रलैंड	फैडरल असैंबली
टर्की	ग्रांड नेशनल असैंबली	इटली	सैनेट
		स्पेन	कौर्टेस
जर्मनी	रीशस्टैग	मिसर	बरलामान

ससार के अत्यधिक वेतन पाने वाले—

अमरीका का प्रधान	२०००० पौंड प्रति वर्ष
जापान का प्रधान मत्री	७४८८ ,,
इंगलिस्तान का प्रधान मंत्री	५००० पौंड ,,
,, ,, लार्ड चांसलर	८००० ,, ,,
भारत का वाइसराय	२५०८०० रुपये प्रति वर्ष
जर्मनी का फ्युहरर	३७८०० (र. म.) ,, (इसके साथ ही १२०००० र. म. प्रतिवर्ष उसे भत्ता मिलता है ।)

१९३५ मे भारत मे

फैक्टरियां	८८३१ (कर्मकर १६१०६३२ व्यक्ति, दुर्घटनाएं १८१२७)
जलाबोर्ड	१०६८ (आय १६१७०३४५५ रु० । व्यय १५६१७८८५८ रु०)
मुनिसिपल कमेटियां	७६८ (आय ३८०७६८२०८ रु० । व्यय ३७५६६०२१० रु०)
कोआपरेटिव समितियां	८६१८४

आकाश यात्रा मे प्राप्त कुछ पराकाष्ठाए (रिकार्ड)

—जिनसे बढ़कर अभी तक कोई नहीं कर सका है ।

१६३४ में इटली के फ्रांसिस्को अजेलो ने हवाई जहाज़ की ४४० मील प्रति घण्टा की रफ्तार का रिकार्ड स्थिर किया है ।

१६३८ में आर. ए. एफ. के एक बम-वर्षक जहाज़ ने ७१ लगातार बिना ठहरे उड़ने का रिकार्ड स्थिर किया है।

१६३७ में आर. ए. एफ. के जहाज़ ने ५३६३७ फुट ऊंची रिकार्ड स्थापित किया है।

कुछ स्त्रियों की उड़ान की पराकाष्ठाएं।

२४—२५ अगस्त, १६३२ को मिसेज़ अमेलिया अमरीका ने २४४७ मील की निरन्तर यात्रा का रिकार्ड स्थिर किया है।

फ्रांस की मिलेहिल्स १६३६ में ४६६४८ फुट ऊंची उड़ी थी। एच० बौचर (फ्रांस) ११ अगस्त १६३४ को २७६ मील प्रति घण्टा की र से उड़ी थी।

२०—२१ मई १६३२ को मिसेज अमेलिया (अमरीका) १३ घंटे मिनट में २०२६ मील उड़ी थी।

मिस ई० ट्रौट और मिस मे कैलिफोर्निया में १२३ घण्टे लगातार आव यात्रा में रहीं।